कथा पंकज

पाठ्य-पुस्तक

बी.बी.ए/ बी.एच.एम/ एम.टी.ए/ बी.बी.ए (एवीएशन)
ए.ई.सी.सी भाषा तहत)
(B.B.A./B.H.M/M.T.A/ B.B.A (Aviation)
Language under AECC)

प्रथम सेमिस्टर/ I SEMESTER

संपादक
डॉ. शर्मिला बिश्वास
डॉ. शैलजा

प्रकाशक
प्रसारांग
बेंगलूरू नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरू – 560001

KATHA PANKAJ:

Edited by

Dr. Sharmila Biswas

Dr. Shylaja

@बेंगलूरू नगर विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण – 2021

Pages: 78

प्रधान संपादक

डॉ. शेखर

मूल्य :-

प्रकाशक

प्रसारांग

बेंगलूरू नगर विश्वविद्यालय

बेंगलूरू – 560001

भूमिका

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय में 2021-22 शैक्षिक वर्ष से एन.ई.पी-2020 नियम (पद्धति) के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए नया पाठ्यक्रम जारी किया जा रहा हैं।

इस पाठ्यक्रम की संरचना ऐसी की गई है कि इसके अध्ययन के पश्चात् हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी यह जान सके कि साहित्य का विश्लेषण कैसे किया जाए और उसकी सराहना कैसी की जाए और दिये गये पाठ को पढ़ने की समझ किस प्रकार विकसित की जाए, ताकि विद्यार्थी भाषा और साहित्य के उद्देश्य से भली-भाँति परिचित हो सके। जैसे विज्ञान और आदि विषयों के अध्ययन के साथ यह भी अधिक उपयोगी हैं। विश्वविद्यालय की यह शुभेच्छा है कि साहित्य और समाज शास्त्रीय विषयों के लिए भी अधिक उपयोगी और प्रासंगिक लगे। एन.ई.पी सेमिस्टर पद्धति के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण किया गया हैं।

इस पृष्ठभूमि में हिन्दी अध्ययन-मण्डल ने विभागाध्यक्ष डॉ. शेखर के मार्गदर्शन में पाठ्य-पुस्तक का निर्माण किया है।

विश्वास है कि यह कथा संकलन छात्र समुदाय के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में योग देनेवाले सभी के प्रति विश्वविद्यालय आभारी है।

डॉ. लिंगराज गांधी

कुलपति

बेंगलूर नगर विश्वविद्यालय

बेंगलूरू–01

प्रधान संपादक की कलम से......

बेंगलूरू नगर विश्वविध्यालय शैक्षिक क्षेत्र में नये-नये विषयों को अपने अध्ययन की सीमा में ले रहा है। अध्ययन को नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 2020 के अनुसार प्रस्तुति करने का प्रयत्न हो रहा है। साहित्यिक विषयों को आज की बदलती परिस्थिति के अनुसार रखने के उद्देश्य से पाठ्यक्रम को प्रस्तुत किया जा रहा है।

एन.ई.पी सेमिस्टर पध्दति के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण किया जा रहा है। इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में योग देने वाले सम्पादकों के प्रति मैं आभारी हूँ।

इस नयी पाठ्य पुस्तक के निर्माण में कुलपति महोदय डॉ. लिंगराज गांधी जी ने अत्यधिक प्रोत्साहन दिया, तदर्थ मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

इस पाठ्यक्रम को नयी शिक्षा नीति क् ध्येयोद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किया गया है। गद्य के विविध आयामों को इस पाठ्य पुस्तक में शामिल किए गए। आशा है कि सभी विद्यार्थीगण इससे अवश्य लाभान्वित होंगे।

डॉ. शेखर
अध्यक्ष, (बी.ओ.एस)
बेंगलूरू नगर विश्वविद्यालय,
बेंगलूरू–01

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	कहानी	लेखक	पृ. सं
1.	नदी गायब है	- एस.आर.हरनोट	01-12
2.	कुसुम कथा	-ऋषिकेश सुलभ	13-27
3.	मनुष्य का परम धर्म	- प्रेमचन्द	28-35
4.	काबुलीवाला	- रबीन्द्रनाथ टैगोर	36-49
5.	दृष्टिकोण	- सुभद्रा कुमारी चौहान	50-61
6.	जीवन का अर्थ	-ज्ञानचंद मर्मज्ञ	62-68
7.	गूँगे	-रांगेय राघव	69-78

1. नदी गायब है

~ एस.आर.हरनोट

लेखक परिचय:-

एस. आर. हरनोट का जन्म हिमाचल प्रदेश के शिमला जिला की पंचायत व गाँव चनावग में 22 जनवरी 1955 के दिन हुआ। उन्होंने बी.ए आनर्स एम.ए हिन्दी में पत्रकारिता लोक सम्पर्क एवं प्रचार प्रसार में उपाधि प्राप्त किये हैं। उनकी प्रकाशित कृतियों में कहानी संग्रह 10 प्रतिनिध कहानियाँ और 'माफिया' अंग्रेजी से अनुवादित कहानी संग्रह हैं। उन्हें अन्तरराष्ट्रीय इन्दु शर्मा कथा पुरस्कार, हिमाचल राज्य अकादमी पुरस्कार, अखिल भारतीय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पुरस्कार, प्राचीन कला केन्द्र चण्डीगढ़ द्वारा श्रेष्ठ साहित्य सम्मान, हिमाचल केसरी पुरस्कार आदि पुरस्कार और सम्मान मिले हैं।

~*~

टीकम हाँफता हुआ घर के नीचे के खेत की मुंडेर पर पहुँचा और जोर से हाँक दी।

पिताजी! दादाजी! ताऊजी! बाहर निकलो। नदी गायब हो गई है।

हाँक इतने जोर की थी कि जिस-किसी के कान में पड़ी तो वह बाहर दौड़ा आया होता।

टीकम अब खेत की पगडंडी से ऊपर चढ़ कर आँगन में पहुँच गया था। उसका माथा और चेहरा पसीने से भीगा हुआ था। चेहरे पर उग आई नर्म दाढ़ी के बीच से पसीने की बूंदे गले की तरफ सरकर रही थी। आँखों में भय और आश्चर्य पसरा हुआ था जिससे आँखों का रंग गहरा लाल दिखाई दे रहा था। उसका

पिता और दादा सबसे पहले बाहर निकले और पास पहुँच कर आश्चर्य से पूछने लगे।

टीकू बेटा क्या हुआ? तू ऐसे क्यों चिल्ला रहा है? सुबह-सुबह क्या गायब हो गया?

उसकी सांस फूल रही थी। ओंठ सूख रहे थे। जबान जैसे तालू में चिपक गई हो। कोशिश करने के बाद भी वह कुछ बोल नहीं पा रहा बस ओंठ हिल रहे थे। तभी उसकी अम्मा हाथ में पानी का लोटा लिए उसके पास पहुँच गई। स्नेह से उसके बाल सहलाते हुए लोटा उसकी तरफ बढ़ा दिया। टीकम ने झपट कर ऐसे लोटा छीनकर पूरा पानी गटक गया मानो बरसों का प्यासा हो। कुछ जान में जान आई थी। अब तक कुछ और घरों के लोग भी आँगन में इकट्ठे हो गए, पूरी बात जानना चाहते थे।

बरसात के शुरूआती दिन थे। सुबह के तकरीबन सात बजे का समय होगा। इस वक्त तक पूर्व के पहाड़ों के पीछे से सूरज की किरणों की उजाल गाँव पर सुनहरी चादर बिछा देती थी। पर आज उन पर काले बादलों का डेरा था। पहाड़ आसमान का हिस्सा लग रहे थे। उत्तरी छोर के पर्वतों के ऊपर बादलों की कुछ डरावनी आकृतियाँ थी। हवा के साथ पूर्व के बादल कभी छितराते तो भोर की लालिमा ऐसे दिखती मानो भयंकर आग में बादल जल रहे हों। इसी बीच कई धमाके हुए और आँगन में खड़े सभी लोग चौंक गए। समझ नहीं आया कि यह बिजली चमकी है या कुछ और है। कई घरों की खिड़कियों के शीशे टूट गए थे। गौशाला से पशुओं और भेड़ बकरियों के रम्भाने-मिमियाने की आवाजें आने लगी थीं।

टीकम कुछ सहज होकर सभी को बता रहा था। 'मैं रोज की तरह नदी किनारे घाट में पहुंचा। गेहूँ-फफरा की बोरी एक किनारे उतार कर रख दी और चक्की चलाने को कूहल फेरने चला गया। लेकिन उसमें पानी नहीं था। मैंने सोचा कूहल कहीं से टूट गई होगी। मैं नदी की तरफ हो लिया। वहाँ पहुंचा तो हतप्रभ रह गया। कुछ समझ नहीं आया कि जिस नदी का पानी कभी सूखा ही नहीं वह रात-रात में कैसे सूख गई। कुछ देर मैं ऐसे ही खड़ा रहा। कई बार आँखे मली कि धोखा तो नहीं हो रहा है। लेकिन नहीं पिताजी नहीं दादा वह धोखा नहीं था। नदी सचमुच गायब हो गई है। उसका पानी सूख गया है।

टीकम की बातें सुन कर सभी सकते में आ गए थे। उसकी माँ उसके पास आकर उसे समझाने लगी थी, 'देख टीकू! तू न रात को बहुत देर तक जागता रहा है। कितनी बार बोला कि टेलीवीजन मत इतनी देर देखा कर। तेरी नींद पूरी नहीं हुई है न। फिर मैंने तेरे को तड़के-तड़के अधनींदे जगा दिया था। ज़रूर कुछ धोखा हुआ होगा।'

इसी बीच देवता का पुजारी भी आ पहुँचा था। उसे टीकम की बातों पर कुछ विश्वास होने लगा। उसने सभी को समझाया कि यहाँ आँगन में बहसबाजी करने से क्या लाभ? सभी चल कर अपनी आँखों से देख लेते हैं कि क्या बात है। पुजारी की बात मान कर सभी नदी की ओर चल पड़े।

थोड़ी देर में सभी नदी के किनारे पहुँच गए। टीकम की बात सच निकली। नदी खाली थी। मानो किसी ने पूरे का पूरा पानी रात को चुरा दिया हो। किसी को कुछ समझ नहीं आया कि क्या करें। इसी बीच नीचे की ओर से भी लोग ऊपर को

आते दिखे। वे भी इसी उधेड़ बुन में थे कि नदी का पानी आखिर कहाँ गया?

लोग नदी के किनारे से पहाड़ की ओर चढ़ने लगे। वहाँ से नदी नीचे बहती थी। नदी छोटी थी लेकिन आज तक कभी उसका पानी नहीं सूखा था। कितनी गर्मी क्यों न पड़े, उसका पानी बढ़ता रहता। वह जिन ऊँचे पर्वतों के पास से निकलती थी वे हमेशा बर्फ के ग्लेशियरों से ढके रहते थे। उन पहाड़ों पर कई ऐसे हिमखंड थे जो सदियों पुराने थे। इस छोटी-सी नदी से कई गाँवों की रोजी-रोटी चलती थी। इसी के किनारे किसानों के क्यार थे जिसमें वे धान-गेहूँ बीजते और सब्जियाँ उगाते। अभी भी पहाड़ों के इन गाँवों में कोई पानी की योजना नहीं थी इसलिए लोगों ने जरूरत के मुताबिक गाँवों को छोटी-छोटी कूहलों से पानी लाया था। लेकिन आज तो जैसे उन पर पहाड़ ही टूट गया हो।

अभी तकरीबन एक किलोमीटर ही सब लोग ऊपर पहुंचे थे कि तभी इलाके का प्रधान पगडंडी से नीचे उतरते दिखाई दिया। उसके साथ कुछ अनजाने लोग थे जो पहाड़ी नहीं लगते थे। लोगों ने उसे देखा तो कुछ आसरा बंधा। वही तो उनके इलाके का माई-बाप है। इतने लोगों को साथ देखकर वह पल भर के लिए चौंक गया। फिर पुजारी से ही पूछ लिया, 'पुजारी जी! सुबह-सुबह कहाँ धावा बोल रहे हो। खैरियत तो है न।'

पुजारी के साथ लोगों ने जब प्रधान को देखा तो थोड़ी जान में जान आई। पुजारी कहने लगा, 'प्रधान साहब! अच्छा हो गया कि आप यहीं मिल गए। क्या बताएँ आपको? देखो न

हमारी नदी का पानी ही सूख गया है। पता नहीं कहीं देवता हमसे नाराज तो नहीं हो गया है?'

पुजारी के कहते ही प्रधान की हँसी फूट पड़ी थी। उसके साथ जो अजनबी थे वे भी हँस पड़े। किसी और को उनकी हँसी में कुछ न लगा हो पर टीकम को हँसी अच्छी नहीं लगी। उसमें जरूर कुछ ऐसा था जो उसको भीतर तक चुभ गया। वैसे भी वह इक्कीस बरस का जवान मैट्रिक पढ़ा था और पुलिस में नौकरी के लिए हाथ पाँव मार रहा था। गरीब परिवार से था इसलिए पढ़ने कॉलेज शहर नहीं जा सका। पर घर रह कर ही पत्राचार से बी.ए. की पढ़ाई कर रहा था। वैसे गाँव के लोग भी उसे परधान ही कहा करते क्योंकि वह हर समय लोगों के लिए कुछ न कुछ करता रहता। कभी किसी की अर्जी-चिट्ठी लिख देता। कभी किसी का कोई काम कर देता। लोगों को उनके अधिकारों के बारे में बताता रहता। बोल-चाल में भी उसका कोई मुकाबला नहीं था। लोग तो उसे इलाके के भावी प्रधान के रूप में देखने लगे थे, परन्तु उसका इस तरफ कोई ध्यान नहीं था। उसे पता नहीं क्यों पुलिस की नौकरी का शौक था।

प्रधान ने जेब से सिगरेट निकाली और लाइटर से सुलगा कर पुजारी से बतियाने लगा, भई पुजारीजी, सुबह-सुबह इतने परेशान होने की जरूरत नहीं है। तुम्हारी नदी कहीं नहीं गई। अब वह बिजली बन गई है। इलाके में बिजली बन कर चमकेगी। तुम्हारे लिए नए-नए काम लाएगी। गाँव के लोग मेरे को हमेशा बोलते थे न कि प्रधान ने कुछ नहीं किया। आज हर घर से एक आदमी को कम्पनी काम दे रही है। मैं तो इसलिए ही तुम्हारे पास आ रहा था।'

'मतलब.......।'

टीकम ने बीच में ही प्रधान को टोक लिया। प्रधान हल्का सा सकपकाया। उसे टीकम कभी फूटी आँख नहीं सुहाया था। सुहाता भी क्यों, पढ़ा लिखा समझदार था। प्रधान के लिए खतरे की घंटी कभी भी बजा सकता था। 'मतलब यह बचुआ कि तू तो पढ़ा लिखा है रे। अखबार नहीं पढ़ता क्या? सपने तो ठाणेदार बणने के देखता है। बई पुजारी जी! पहाड़ के साथ जो दूसरा जिला लगता है न उसकी सीमा पर पिछले दिनों हमारे मुख्यमंत्री ने बिजली की नई योजना का उद्‍घाटन किया है। तुम्हारी वह नदी एक सुंरग से वहीं चली गई है। वहाँ उसकी जरूरत है। वह वहाँ बिजली तैयार करेगी।'

'पर हमारा क्या होगा प्रधान जी। इतने गाँवों के खेत-क्यार सूख जाएँगे। घराट बन्द हो जाएँगे।'

'पानी रहेगा पुजारी जी। रहेगा। बरसात का पानी इसी में रहेगा। बई वह पहाड़ पर तो नहीं चढ़ेगा न। फिर अब घराट-घरूट कौन चलाता है। बिजली से चक्कियाँ चलेगी। क्यों रे टीकम, क्यों नहीं लगाता एक दो चक्कियां। सरकार लोन दे रही है। काहे को पुलिस की नौकरी के चक्कर में पड़ा है।'

इतना कह कर प्रधान ने वहाँ से खिसकना ही ठीक समझा। टीकम भले ही सारी बातें समझ गया हो पर लोगों की समझ में कुछ नहीं आया था। टीकम ने ही सभी को समझाया था कि इस पहाड़ी नदी को एक सुरंग से दूसरी तरफ ले जाया गया है और अब वह यहाँ लौटेगी नहीं। उधर उसके पानी से बिजली पैदा होगी।

नदी गायब होने के साथ उनके गाँव पर एक और संकट खड़ा हो गया था। उनका गाँव ऐसे पर्वतों की तलहट्टी में था जहाँ ग्लेशियरों के गिरने का खतरा हमेशा बना रहता था। अब रोज डायनामाइटों के धमाकों से टनों के हिसाब से उस नदी में चट्टाने गिरनी शुरू हो गई थी और नदी के किनारे जो घाट थे वे तो पूरी तरह नष्ट हो गए थे। जिस नदी में नीला साफ पानी बहता रहता उसमें मिट्टी पत्थर भरने लगे थे। सबसे ज्यादा खतरा टीकम के गाँव को ही था। लोग जानते थे कि धमाकों के शोर से पहाड़ पर सदियों से सोया ग्लेशियर जाग गया तो उनके गाँव को लील लेगा। इसलिए उन्हें कुछ करना होगा। इस योजना का जितना काम हो गया वह ठीक है पर इससे आगे होने से रोकना होगा।

टीकम ने गाँव के लोगों की एक समिति का गठन किया था और एक आवेदन पत्र बना कर उस पर सभी के हस्ताक्षर करवाए थे। उसका मानना था कि प्रधान के पास जाने से कोई फायदा नहीं होगा। उन्हें विधायक और मुख्य मन्त्री से मिलना होगा। इसलिए सबसे पहले दस-बीस लोग टीकम की अगुवाई में पहले विधायक को मिले। लेकिन विधायक ने बजाए उनकी तकलीफ सुनने के उल्टा विकास का लम्बा चौड़ा भाषण दे दिया था। बिजली योजना का काम जोरों पर था। अब तो गाँव के नीचे से एक सड़क भी निकल रही थी जिसकी खुदाई और ब्लास्ट से उनके गाँव के नीचे की पहाड़ी धंसने लगी थी। कई बीघे जमीन तो धँस गई थी अब इस काम को रोकना उनकी प्राथमिकता थी।

सभी जानते थे कि प्रधान और विधायक से लेकर ऊपर तक कोई उनकी मदद नहीं करेगा। क्योंकि जिस कम्पनी को वह काम मिला था वह बहुत बड़ी कम्पनी थी जिसने अरबों रूपए इस योजना के लिए लगा दिए थे। उन्हें इससे कोई मतलब न था कि उनके काम से नदी गायब हो रही है या जंगल नष्ट हो रहे हैं या गाँव की जमीन धंस रही हैं या गरीबों की रोजी-रोटी छीनी जा रही है। उनके लिए तो पहाड़ सोना थे और प्रदेश की सरकार विकास के नाम पर उस कम्पनी पर बहुत ज्यादा महरबान भी थी। मगर लोगों के पास अब कोई रास्ता न बचा था।

पुजारी ने ही लोगों को सुझाया कि क्यों न देवता का आशीर्वाद लिया जाए। वैसे भी उनके गांवों के देवता की दूर-दूर तक मान्यता थी। यहाँ तक कि चुनाव होने से पहले मुख्य मंत्री तक वहाँ माथा टेकना नहीं भूलते थे। वह प्राचीन मन्दिर था जिसकी भव्यता देखते ही बनती थी। दो मँजिले इस मन्दिर की एक मंजिल जमीन के नीचे थी जिसमें लाखों-करोड़ों का साज-सामान रखा हुआ था। मन्दिर के तकरीबन सभी कलश और मूर्तियां सोने की थी। किवाड़ों पर गजब की नक्काशी थी। यानी उस इलाके का वह सर्वाधिक भव्य मन्दिर था। देवता भी शक्तिशाली था।

देव पंचायत ने देवता का आहवान किया तो देवता नाराज हो गया। प्रधान विधायक और मुख्यमंत्री पर बरस पड़ा। विनाश की बातें होने लगी। निणर्य हुआ कि विधायक को यहाँ बुलाया जाए। देवता की तरफ से फरमान जारी हुआ लेकिन विधायक नहीं आया। फिर मुख्य मन्त्री को फरमान गया। मुख्य

मंत्री ने सहजता से उत्तर भी दिया कि वे देवता का अपार आदर करते हैं लेकिन विकास के मामले में देवता को बीच में लाना कोई विपक्षी राजनीति है। लोग निराश हो गए।

अब निणर्य हुआ कि मिलकर इस लड़ाई को लड़ा जाए। कम्पनी का काम रोका जाए। इसलिए उस गाँव के साथ कई दूसरे गाँव के लोग भी इकट्ठे हो गए और बड़े समूह में विरोध करते हुए कम्पनी के काम को रोक दिया गया। लोग वहीं धरने पर बैठे रहे। दूसरे दिन उन्हें भनक लगी कि शहर से हजारों पुलिस जवान आ रहे हैं। टिकम पुलिस की ज्यादतियों से वाकिफ था। विचार-विमर्श हुआ। तय किया गया कि देवता का सहारा लिया जाए। कुछ लोग वापिस लौटे और देवता का पारम्परिक विधि-विधान से श्रृंगार किया गया। उनके पास यह अपने गाँव नदी एवं जमीन को बचाने का आखरी विकल्प था।

देवता अपने बजंतर के साथ पहली बार एक अनोखे अभियान के लिए निकला था। विरोध के लिए निकला था। आज न कहीं देव जातरा थी और न कोई देवोत्सव। न किसी के घर कोई शादी-ब्याह था न किसी की इच्छा ही पूरी हुई थी। दोपहर तक देवता विरोध स्थल पर पहुँच गया। देवता के साथ असंख्य लोग थे। सौ से ज्यादा लोग तो पहले ही कम्पनी के काम को रोके बैठे थे। देवता और सरकारी पुलिस तकरीबन-तकरीबन एक साथ पहुँचे थे। लोगों को विश्वास था अब कोई ताकत उनके विरोध को कुचल नहीं सकती। उनके साथ देवता है। उसकी शक्ति है।

पुलिस के एक बड़े अधिकारी ने लाउडस्पीकर पर कई बार हिदायतें दीं कि लोग पीछे हटते जाएँ। लेकिन लोगों का

जलूस देवता के सानिध्य में बढ़ता चला गया। सबसे आगे देवता का रथ था। सोने-चाँदी के मोहरों से सजा हुआ। साथ उसके निशान थे। बाजा-बजंतर था। स्थिति जब नहीं सँभली तो पुलिस को लाठी चलाने के आदेश दे दिए गए। वे शिकारी कुत्तों की तरह लोगों पर टूट गए। उस विरोध में मर्द, औरतें, जवान, बूढ़े और बच्चे भी शामिल थे।

लोगों की भीड़ पर पुलिस की लाठियाँ बरस रही थीं। पर लाठियों का असर कोई खास नहीं हो रहा था। पहाड़ी शरीर मिट्टी-गोबर से पुष्ट उन देहातियों पर जब लाठियाँ असरदार नहीं रहीं तो बंदूकें तन गई। फिर एकाएक गोलियाँ चल पड़ीं। पहली गोली देवता के एक बुजुर्ग कारदार को लगी थी। वह पहाड़ी से लड़खड़ाता नीचे गिर गया। दूसरी गोली पुजारी को लगी। वह जोर से चीखा। उसके हाथ से फूल-अक्षत और सिंदूर की थाली नीचे गिर गई और बेहोश हो गया। लोग बहुत घबरा गए थे। अब गोलियों का सामना करना कठिन हो रहा था। वे पीछे हटने लगे। भागने लगे। लेकिन उनका भागना बेअसर साबित हुआ। रास्ता सँकरा था जिससे ऊपर भागने में कठिनाई हो रही थी। आर-पार ढांक थे। दाईं तरफ गहरी खाई। नीचे असंख्य पुलिस वाले हाथों में लाठियाँ और बदूंके ताने ऊपर की ओर बढ़ रहे थे। दो युवाओं को भी गोली लगी थी। उन्होंने वहीं दम तोड़ दिया था। एक लड़की अन्तिम साँसे गिन रही थी। कई लोग घायल हो गए थे। रास्तों और झंखाड़ों में गिरे-पड़े थे।

टीकम जेसे-कैसे देवता को बचाने में लगा था। रथ का मुंह पीछे मोड़ कर कारदारों को वहाँ से भागने के लिए चिल्ला रहा था। देवता श्रृंगार में था। लोगों के कन्धों पर था। उनके न

रथ छोड़ते बन रहा था और न भागते हुए। देवता भी लाठियाँ-गोलियाँ नहीं रोक पाया। अपने हक की लड़ाई में लोग अपार विश्वास और आस्था के साथ उसे अपने साथ लाए थे। देवता के साथ यह अपनी तरह का अनूठा विरोध था पर गोलियों के आगे वह भी असहाय हो गया था। कुछ युवाओं ने हिम्मत दिखाकर मरे हुए लोगों की लाशों को उठा लीं थी।

लोग निराश हताश लौट रहे थे। घरों में औरतें और बच्चे इन्तज़ार कर कर रहे थे। मुश्किल से लोग गाँव तक पहुंचे थे। उनके साथ एक कारदार, पुजारी और दो युवाओं की लाशें देख सभी का कलेजा मुंह को आ गया था। इस हादसे ने पूरे गाँव और इलाके को दहला दिया था। देवता के गूरों और कारदारों को कुछ नहीं सूझ रहा था। युवा आक्रोश में थे। उन्होंने देवता के रथ को कारदारों से छीन लिया और मंदिर के प्रांगण में रख दिया। साथ बचे हुए ढोल, नगाड़े, करनाले और दूसरे वाद्य भी।

एक युवा घर से मिट्टी का तेल ले आया। देवता के रथ को जलाने में अब कुछ ही देर थी। लेकिन टीकम ने उन्हें उन्हें समझा-बुझा कर रोक दिया था। जैसे कैसे लोग शान्त हुए तो देवता को कोठी में बन्द कर दिया गया। यह अविश्वास की परिकाष्ठा थी। आज कई भ्रम टूटे, आस्थाएँ मरी थीं। देवता मन्दिर में चुपचाप शक्तिविहीन हो कर पड़ा था। कहाँ गई उसकी शक्ति? क्यों उसने सहायता नहीं की? क्यों कोई चमत्कार नहीं हुआ? बात आग की तरह पूरे इलाके में फैली गई थी। पुलिस की ज्यादतियों से लोग खिन्न थे। आश्चर्य चकित थे। देवता के होते हुए जो कुछ हुआ उसे देख कर हतप्रभ थे। जब

देवता कुछ नहीं कर सका तो उनका कौन अपना होगा? हताशाएँ चारों तरफ थीं।

अन्धकार चारों तरफ था। परियोजना की बलि चढ़ जाएगा उनका गाँव। न पशुओं को पानी न खेतों को पानी। न जंगल की हरियाली न नदी का शोर। कुछ भी नहीं। शेष रह जाएगा तो डायनामाइटों का शोर, गिरते-दरकते पहाड़, पिघलते ग्लेशियर। पुलिस वाले अब निश्चिन्त हो गए थे। उनकी गोलियों के आगे देवता की भी नहीं चली। वे मस्ती में खा-पी रहे थे। उन्होंने सरकार के साथ कम्पनी के अफसरों को भी खुश कर दिया था। बकरे कट रहे थे। कम्पनी के लोगों ने सारे इंतजाम उनके लिए किए थे।

लेकिन अगले ही दिन यह समाचार सुर्खियों में था कि उस रात इस हादसे के शिकार हुए ग्रामीणों ने रात को शराब और मांस के उत्सव में मदहोश हुए पुलिस व कम्पनी के लोगों पर धावा बोल दिया था और सुबह तक उनका वहाँ कोई नामोनिशान नहीं था। मौकाए वारदात से महज कुछ बंदूकें, दस-बीस लाठियाँ, दर्जनों शराब की टूटी हुई बोतलें, बकरों के कटे सिर और उधड़ी खालें और फटी हुई बर्दियों के टुकड़े बरामद हुए थे। शायद जिस देवता को पुलिस के आतंक ने भगौड़ा बना दिया था वही ग्रामीणों में सामुहिक रूप से प्रकट हो गया था और ग्रामजनों ने अपने आक्रोश से शासन की दमनकारी शक्तियों को तहस-नहस कर दिया था।

~Ω~

2. कुसुम कथा

~ ऋषिकेश सुलभ

<u>लेखक परिचय:-</u>

ऋषिकेश सुलभ का जन्म फ़रवरी 15, 1955 को भारत में बिहार के लहेजी नामक एक छोटे से गाँव में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा गाँव मे ही हुई। लहेजी के माहौल और रंगमंच से जुडाव ने आरंभ से ही रंगमंच की तरफ़ आपका ध्यान आकृष्ट किया। आपके पिता स्वतंत्रता सेनानी श्री रमाशंकर श्रीवास्तव आपकी आगे की शिक्षा हेतु आपको ले कर पटना चले आये। हिन्दी से स्नातक होने के बाद आपने उच्च शिक्षा प्रारंभ की। पिछले तीस वर्षों से वे साहित्य-सृजन के अलावा अनेक सांस्कृतिक आंदोलनों में भी भाग लिया है। हिन्दी साहित्यिक पत्रिका कथादेश में लेख लिख रहे हैं। धरतीआबा आपके द्वारा लिखा गया नया नाटक है।_2010 कथा यूके कहानी-संग्रह 'वसंत के हत्यारे' के लिये 16वाँ इन्दु शर्मा अंतर्राष्ट्रीय कथा सम्मान", हिन्दी कहानियों के लिये बनारसी प्रसाद भोजपुरी सम्मान, रंगमंच के गतिविधियों एवं नाटक-लेखन के लिये अनिल कुमार मुखर्जी शिखर सम्मान, नाटक-लेखन के लिये रामवृक्ष बेनीपुरी सम्मान, रंगमंच की गतिविधियों के लिये पाटलिपुत्र पुरस्कार", नाटक-लेखन के लिये सिद्धार्थ कुमार स्मृति सम्मान आदि पुरस्कार एवं सम्मान मिला हैं।

~*~

मैं लगभग पच्चीस वर्षों बाद अपनी जन्मभूमि पर लौटी हूँ। आना तो वह भी चाहते थे पर उन्हें फ़ुर्सत नहीं मिली। व्यवसाय की अपनी व्यस्तताएँ होती हैं–मकड़ी जाल की तरह

फैली हुई। भाग-दौड़ लेन-देन हिसाब-क़िताब आदि तरह-तरह के काम-काज से बुना हुआ मकड़जाल। मैं तो आज तक इस रहस्य को समझ ही नहीं सकी कि वह कैसे इस मकड़जाल के एक-एक धागे को पहचानते हैं! हर धागे की शुरुआत से लेकर आख़िरी सिरे तक पर उनकी नज़र होती है। मज़ाल है कि कोई सिरा एक-दूसरे से उलझ जाए और फिर सुलझे नहीं! हर हाल में चीज़ों को सुलझा लेना उनकी ख़ासियत है।

मेरे साथ ठीक इसके उलट होता है। मुझे तो सब उलझा हुआ ही लगता रहा हमेशा। एक तो मैं उनसे कभी कुछ पूछती ही नहीं और अगर कभी कुछ पूछ लिया, तो वह हँसते हैं। कहते हैं -'जितना दिमाग़ तुम्हें समझाने में ख़र्च करूँगा उतने में मेरे दसियों काम निबट जाएँगे। और तुम्हें समझने की कौन सी ज़रूरत आ पड़ी है?'

उनका आना तय था। बल्कि, पिछले कुछ दिनों से वह बार-बार यहाँ की चर्चा कर रहे थे। उन्होंने ही आने के लिए दिन तय किया। अपनी भाग-दौड़ भरी व्यस्त ज़िन्दगी के बीच इन दिनों जब उन्हें थोड़ी सी भी फ़ुर्सत मिलती, वह यहाँ की चर्चा करने लगते। बम्बई से पटना तक हवाई जहाज़ और पटना से किराए की कार लेकर देवघाट तक जाने का कार्यक्रम उन्होंने ही बनाया।

उनका उत्साह देखते ही बनता था। मेरी इस शंका पर कि क्या इतने दिनों तक उनका बम्बई से बाहर रह पाना, यानी यहाँ रह पाना सम्भव होगा, वह ठठाकर हँसे थे। यहाँ कम से कम एक सप्ताह तक रुकने का कार्यक्रम था। उन्होंने वापसी का टिकट इसी हिसाब से कराया था। मेरे मन में यह चिंता बनी हुई

थी कि यहाँ पहुँचकर कैसे रहना हो सकेगा? कहाँ रहना होगा? कौन-कौन मिलेगा और किस हाल में मिलेगा? किसका व्यवहार कैसा होगा? पर उनके ऊपर इन चिंताओं का कोई असर नहीं था। उनका मन उछाह से भरा हुआ था। पर ऐन वक्त पर सबकुछ उलट गया। वह नहीं आ सके।

उन्हें एक बड़े बिजनेस डील के लिए विदेश जाना पड़ा। वह उदास दिखे थे। उन्होंने कहा था-'इतने सालों बाद सोचा जाने के लिए... तो..' कोई सम्बन्ध यदि टूट जाए, तो क्या उसके टूटने का दुःख, या अंत तक नहीं निभा पाने का दुःख लिये तमाम उम्र रोना चाहिए? मैं जानती हूँ कि यह दुविधा भरा सवाल नया नहीं है। पर इन दिनों मैं बार-बार अपने-आप से यही सवाल करती हूँ। इंसान भी तो जीते-जीते अचानक मर जाता है। ग्रहों, नक्षत्रों और हाथ की रेखाओं के सारे खेल धरे के धरे रह जाते हैं। उम्मीदें, सपने, आनेवाले समय के लिए बुनी गईं तमाम इच्छाए, इंसान के मरने के साथ ही मर जाती हैं। बिना किसी हलचल के, कोई तर्क-वितर्क किए बिना चुपके से सबकुछ निष्प्राण हो जाता है।

अचानक रोशनी के बुझते ही तमाम आकृतियाँ जैसे पिघलकर बिना किसी आकार की स्याही में बदल जाती हैं, वैसे ही क्या सम्बन्धों के साथ नहीं हो सकता? सम्बन्धों का टूटना ऐसे ही होना चाहिए। मृत्यु की तरह। जैसे जीवन की वापसी की सारी उम्मीदों पर ताले जड़ती और चाबी को गहरे कुएँ में डालती हुई आती है मृत्यु, वैसे ही समाप्त होना चाहिए सम्बन्धों को, यदि उन्हें समाप्त होना है तो। सम्बन्धों के टूटने के बाद यदि ज़रा सा भी कुछ शेष रह जाता है, तो वह ता-उम्र दुःख देता है।

सम्बन्धों के फिर से जीवित होने की आस टीस की तरह साथ-साथ चलती रहती है। सम्बन्धों का टूटना मृत्यु की तरह हो, तभी इस टूटने को सही मायने में टूटना कहा जा सकता है।

देवघाट से बम्बई के लिए विदा होते हुए मैं अपने रिश्तों का बहुत सारा हिस्सा साथ लेती गई थी। हालाँकि, उनके अनुसार मैं कभी वापस नहीं आने के लिए गई थी, पर आज देवघाट में हूँ। बम्बई में रहते हुए पच्चीस वर्षों तक जो टीस मैं पालती रही, उसकी लहलहाती फ़सल आज यहाँ काट रही हूँ। है न अजीब बात, कुछ-कुछ उलझी हुई-सी। हाँ, बहुत कुछ उलझा हुआ है, पर मैं जानती हूँ कि इसे एक दिन, बहुत जल्दी सुलझ जाना है। बस, निर्णय लेने भर की देर है।

कुसुम बुआ के आने के बाद घर में रौनक भर गई है। अपनी गृहस्थी में उलझी रहनेवाली जिस दिदिया को दो-चार दिनों के लिए भी छुट्टी नहीं मिलती थी, वह बुआ के आने की ख़बर सुनते ही देवघाट पहुँच गई। दो पीढ़ियों की बेटियाँ एक साथ मायके में हैं। मेरे घर में उत्सव का माहौल है। बुआ तो अकेली आई हैं, पर दिदिया के दोनों बेटों की धमाचौकड़ी और गौरैया की तरह फुदकती नन्हीं सी बेटी की चहकन में पण्डित धूर्जटि पाण्डेय का घर-आँगन डूबा हुआ है। मैंने दिदिया को इस घर पर राज करते हुए बचपन से देखा है। पर आजकल वह बुआ की शागिर्दी में लगी हुई है। उनके पीछे-पीछे डोलती फिरती है।

अम्मा और दिदिया दोनों इन दिनों बाबा की सेवा से मुक्त हैं। मेरे बाबा पण्डित धूर्जटि पाण्डेय चाहे जिसको आवाज़ दें, उनकी आवाज़ पर उन तक बुआ ही पहुँचती हैं। पण्डितजी

की पूजन-सामग्री से लेकर भोजन-स्नान तक की सारी व्यवस्था बुआ ने सँभाल ली है। सिर्फ इतना ही नहीं, मेरे बाबा के दो छोटे भाइयों के कुनबे यानी पट्टीदारों के साथ कुछ वर्षों से रिश्ते में जो ठंडापन आ गया था, देखते-देखते आत्मीयता की ऊष्मा से भर गया है। बुआ की उपस्थिति ने कई जगह प्रभाव डाला है, मानो वर्षों से यह प्रयोगशाला कुसुम नामक रसायन की प्रतीक्षा में थी।

जिस बुआ की उपस्थिति से यह हलचल मची है, उनके आने की ख़बर से पहले तक उनके नाम की चर्चा चलते ही एक सर्द चुप्पी छा जाती थी। मेरी अम्मा की आँखें देवघाट के किनारे-किनारे बहनेवाली सरयू की धारा की तरह उमड़ने लगतीं मेरे बाबूजी पण्डित रूद्रदेव पाण्डेय आगे की थाली सरकाकर उठ जाते और कई दिनों तक चुप-चुप रहते और बाबा की आँखों में क्रोध की लपटें और नेह की आर्द्रता दोनों एक साथ दिखतीं।

हम दोनों अचानक बदले और इस मौसम से भयभीत हो जाते। क्यों होता है ऐसा? यह प्रश्न हम दोनों को नींद में भी सताता। हमारे लिए हमारे बचपन का सबसे बड़ा रहस्य थीं कुसुम बुआ। दिदिया और मैं, जब दोनों साथ होते, बुआ के बारे में ख़ूब बातें करते। अपनी नासमझी के दायरे में ही सही, हम इस रहस्य को भेदने की कोशिशें करते। मैं तो कई बार पिटा भी हूँ। बुआ को देखने.... बुआ से मिलने.... बुआ के यहाँ जाने की ज़िद करता और घर में तनाव भर जाता। बाबा और बाबूजी तो नहीं, पर अम्मा पीटतीं। अक्सर इस तनाव का अंत मेरी पिटाई से ही होता।

दिदिया होशियार थी। वह ऐसी ज़िद नहीं करती। चाहती तो वह भी थी, पर चुप लगा जाती। उसने बुआ को देखा था। वह जब पाँच साल की थी, तब बुआ यहाँ से गई थीं। पाँच साल की बच्ची को कितना कुछ याद रह सकता है भला! फिर भी, उनके बारे में जो भी उसकी स्मृति में था, मुझे बताती और इस ज्ञान के बल पर मुझ पर रोब झाड़ती। जब हमदोनों बड़े हुए और धीरे-धीरे कुछ बातें मालूम हुईं, तो मुझे अजीब लगा।

मेरे बाबूजी के भोलेपन से भीतर ही भीतर घुटते रहे, सब कुछ सहते जाने की आदत ने भी स्थितियों को जटिल बनाया था। बाबूजी एक मंदिर में पुजारी हैं। लोग उन्हें रूद्रदेव पाण्डेय नहीं, पुजारीजी कह कर बुलाते हैं। पिछली शताब्दी की शुरुआत में बने इस मंदिर में मेरी पिछली तीन पीढ़ियाँ पूजा करती आ रही हैं। अब बाबूजी को इस बात की चिंता घुन की तरह खाए जा रही है कि उनके बाद क्या होगा? वह जानते हैं कि मैं पुजारी बनकर जीवन गुज़ारना नहीं चाहता। वह स्वयं भी नहीं चाहते कि मैं पुजारी बनूँ।.... पर मामला पाँच बीघा ज़मीन की खेती का है। यह ज़मीन पुजारी की जीविका और मंदिर की देखभाल के लिए दान में मिली है।

मेरे गाँव के ही एक कायस्थ परिवार ने यह मंदिर बनवाया था और ज़मीन दान में दी थी। वे लोग अब गाँव में नहीं रहते। शहर में बस गए। इसी पाँच बीघे की खेती के बल पर मेरे परिवार का भरण-पोषण होता रहा है। मैंने इसी साल बी.ए. किया है। मास्टर बनने की कोशिश में हूँ। बाबा चाहते हैं कि मैं देवघाट में ही रहूँ। यहीं बच्चों को पढाऊँ और उनकी मृत्यु से पहले मंदिर में पूजा-पाठ का काम सँभाल लूँ। कुसुम बुआ की

बात करते-करते मैं यह कौन सी कथा कहने लगा! अपनी इस आदत से बहुत परेशान हूँ मैं।

बात कहीं से शुरु करता हूँ और कहीं ख़त्म। सिलसिलेवार बातों को रखने की कला नहीं सीख पाया। दिदिया को यह कला ख़ूब आती है। उसने देवघाट में अनुपस्थित बुआ के पच्चीस वर्षों को अपनी बातों से पाट दिया है। बुआ जिस किसी के बारे में जिज्ञासा करती हैं, दिदिया उसके बारे में विस्तार से बताती है। मसलन, किसकी मौत कब हुई?.. किसको कितने बच्चे हैं?... किसकी शादी कब और कहाँ हुई? यहाँ तक कि किसकी बहू के मायके से विदाई के समय क्या आया और किसने अपनी बेटी की शादी में क्या-क्या दिया? बुआ की तमाम उत्सुकताओं को शांत करने में लगी है दिदिया। वह एक भी ब्योरा छूटने नहीं देती और बुआ हैं कि देवघाट की दिवंगत आत्माओं से लेकर नवजात शिशुओं तक का विवरण जानने के लिए उत्सुक हैं। बुआ बता रही थीं कि बम्बई में रहते हुए भी वह देवघाट की चारों दिशाओं में बसे ग्राम देवताओं - जोगी बाबा, आशा बाबा, ब्रह्म बाबा और सती माई को सुमिरती रही हैं। जोगीबाबा तो सफेद चोगा पहने उनके सपनों में आते रहे हैं।

मैं एक बात बताना चाहता हूँ... अपने बारे में। जब से बुआ आयी हैं, जाने क्यों मुझे लगता है कि मेरे जीवन की दिशा अब बदलने ही वाली है।

बुआ के आने की ख़बर मिलते ही मैं भागती हुई देवघाट पहुँची। हालाँकि, दम मारने की भी फुर्सत नहीं थी मेरे पास। एक तो खेती-किसानीवाले घर में फुर्सत निकाल पाना वैसे ही

मुश्किल होता है और ऊपर से चैत-वैशाख। इन महीनों में रबी फ़सल की कटनी-दौनी की अफ़रा-तफ़री मची होती है। मेरे घर के लोग पुरोहिताई नहीं करते। हमलोग अपने गाँव के बड़े खेतिहार हैं। मेरे श्वसुर पण्डित गजानन चौबे इलाक़े के मातबर लोगों में हैं। इस बदले हुए ज़माने में भी उनका रोब-दाब है।

मेरे पति इकलौते हैं। दरवाज़े पर जीप है, ट्रैक्टर है, थ्रेसर है, पम्पिंग सेट है, एक जोड़ी बैल हैं, भैंस है, जर्सी गाय है। कलमी आमों और शाही लीची के पेड़ों का अपना बाग़ीचा है। दूध-दही-अन्न-फल से भरा-पूरा है मेरा घर। पूरे जवार में मेरे परिवार और पट्टीदारों की धाक है। देवघाट के लोग कहते हैं कि भगवान सबकी बेटी को पुजारीजी की बेटी जैसा भाग्य दे।

मेरे श्वसुर ने मुझे फाल्गुनी शिवरात्रि के दिन मेंहदार के मेले में देखा था। मैं अम्मा के साथ शिवजी को जल चढ़ाने गई थी। बाबा, बाबूजी और नीलेश भी साथ थे। मैं मैट्रिक की परीक्षा देनेवाली थी। बाबा का कहना था कि यह संयोग है कि परीक्षा से पहले शिवरात्रि की तिथि है। मुझे शिवजी की पूजा करनी चाहिए। उनकी कृपा हुई तो मैं अच्छे नम्बरों से पास हो जाऊँगी। मैं ठीक परीक्षा से पहले कहीं जाने को तैयार नहीं थी, पर भाग्य में लिखा था शिव का वरदान पाना... सो चली गई। परीक्षा और रिजल्ट से पहले वर मिल गया। चौबेजी ने मुझे देखा और पता लगवाया। जब उन्हें पता चला कि मैं देवघाट के पण्डित धूर्जटि पाण्डेय की पोती हूँ, तो बाबूजी को संदेश भिजवाया, विवाह तय हुआ, तो सपने की तरह लग रहा था सबकुछ। बाबूजी तो दोनों हाथ जोड़कर चौबेजी के सामने खड़े हो गए थे कि आपके घर के योग्य नहीं हैं हम। पर मेरे श्वसुर ने

भरोसा दिलाया कि सम्बन्ध में हैसियत नहीं देखी जाती। यह तो लड़के-लड़की के भाग्य का खेल है। और मैं चैनपुर के चौबे कुल की बहू बन गई। मेरा रिजल्ट आने से पहले मेरा विवाह हो गया। उन दिनों ये बी.ए. कर रहे थे। सीवान के कॉलेज में पढ़ते थे। कॉलेज से लौटते तो मेरे लिए...।

मैं भी कौन सी पिटारी खोल बैठी! कुछ दिनों बाद चुनचुन आया। फिर चुनमुन पैदा हुआ। इनको बेटी की साध थी, सो दो साल पहले चुन्नी हो गई। इन्होंने हमेशा मुझे मान दिया है। ग़रीब के घर की बेटी मानकर कभी ओछा नहीं सोचा। मेरे मायके को लेकर कभी आनी-बानी नहीं बोलते। नीलेश की पढाई में हमेशा मदद करते रहे हैं। जब जितना चाहूँ, जो चाहूँ बिना पूछे देवघाट भेज सकती हूँ। लीख को लाख कर दूँ या लाख को लीख, इनका मन कभी मलिन नहीं होता। शुरु में बुआ के बारे में इन्होंने भी कई बार पूछा। क्या बताती मैं? चुप रहती या टाल जाती। पर कोई बात छिपती है भला! कुछ दिनों बाद इन्हें मालूम हो गया। पर इन्होंने इस बात की कभी मुझसे चर्चा नहीं की। एक बार जब मैंने पूछा तो कहने लगे कि पैबंद का सीवन उधेड़ने से कपड़ा किसी काम का नहीं रहता और शरीर भी नंगा हो जाता। सच है यह। यही बात लोग नहीं समझते। इस बात को न तो बाबा समझे न ही बाबूजी। जो होना था सो हो गया। इसमें भला बुआ का क्या दोष!

मैं पाँच साल की थी तो बुआ बम्बई चली गईं। मैं तीस की होने जा रही हूँ अब। चौदह साल पूरे होंगे मेरी शादी के। तीन बच्चों की माँ हूँ मैं। बड़ी आस थी कि मेरे ब्याह में तो बुआ आएँगी पर बुआ नहीं आईं। बाद में पता चला कि मेरी माँ के

बहुत रोने-गिड़गिड़ाने के बाद भी बाबा नेवता भेजने को तैयार नहीं हुए। कुसुम बबुनी के आने के बाद मेरा मन स्थिर हुआ है। इतने सालों तक कुम्हार के चाक पर रखी गीली माटी की तरह चक्कर काटते-काटते मैं थक चुकी थी। अब थोड़ा आराम मिला है। मन को चैन मिला है।

इन सालों में शायद ही कोई रात रही होगी, जब बिना रोए-सुबुके मेरी आँख लगी हो। ख़ुशी के ढेरों अवसर आए, पर कुसुम बबुनी को लेकर मेरे मन में टीस बनी रही। मैंने कुसुम को ननद नहीं अपनी सहेली की तरह प्यार किया है। जब मैं ब्याह कर आई कुसुम के लिए वर खोजा जा रहा था। हम दोनों की उम्र में दो-तीन साल का ही फासला है। मेरी सास मर चुकी थीं। कुसुम ही घर सँभालती थी। हम दोनों, सखियों की तरह इस घर में डोलती फिरतीं। कुसुम ने ब्याह के साल ही प्राइवेट से मैट्रिक की परीक्षा पास की।

बड़ी होनहार रही है वह। उन दिनों हमारे घरों में लड़कियों का पढ़ना-लिखना एक संयोग ही था। पढ़ाने का चलन ही नहीं था। बहुत जोड़-घटाकर मैं सिर्फ चिट्ठी बाँचना भर सीख सकी। मेरे श्वसुर पण्डित धूर्जटि पाण्डेय के विरोध के बावजूद मेरे पति अपनी बहन को परीक्षा दिलवाने ले गए थे।

कुमुद छोटी थी। कुसुम से लगभग दो साल छोटी। कुमुद के बारे में बातें करते हुए होठ नहीं खुलते... मन काँपता है पर बात तो करनी होगी। सबसे अलग थी कुमुद। चैत की पुरवाई की तरह चंचल सिलाई-कढ़ाई और गीत-गवनई में हुनरमंद। अब मैं सोचती हूँ, कुसुम से मेरे अपनेपन ने, मेरी निकटता ने अनजाने ही कुमुद के मन में मेरे और कुसुम के लिए घृणा के

बीज बो दिए होंगे। मेरे लाड़-दुलार को उसने कभी स्वीकार नहीं किया। कुसुम से भी वह दूर होने लगी थी। वह चुप रहती। लाख चाहने के बावजूद वह मेरे निकट नहीं हो सकी। शायद उसे लगता रहा कि मैंने उसकी दिदिया को उससे छीन लिया है। जो भी हो, मैं तो इसे अपनी ही भूल मानती हूँ। हालाँकि मैंने कभी भेद-भाव नहीं किया। उसे छोटी बहन की तरह ही प्यार किया। पर मेरे भीतर यह कसक है कि कुसुम से मेरे अपनापे ने उसे मुझसे दूर किया, कुसुम से दूर किया और वह भीतर ही भीतर बदलती चली गई।

कुसुम का ब्याह हुआ। पाहुन पढ़े-लिखे थे। जायदाद नहीं थी। हम लोगो के जैसा ही पुरोहितों का परिवार था। कुसुम ससुराल गई। विदा होकर लौटी। सब कुछ ठीक था। ससुराल में सम्पन्नता नहीं होने के बावजूद कुसुम प्रसन्न थी। कुसुम के आने के बाद पाहुन का देवघाट आना-जाना शुरु हुआ। कुसुम की विदाई की बात चली तो पाहुन ने मना कर दिया। वह चाहते थे कि कुसुम तब तक देवघाट में रहे जब तक वह कोई नौकरी नहीं कर लेते या कोई अपना व्यवसाय नहीं शुरु कर देते। इस बीच मैं माँ बन चुकी थी। पाहुन का आना-जाना लगा रहा। वह आते कुछ दिन रुकते और फिर अपने गाँव चले जाते। कुसुम की विदाई को लेकर फुसृ-फुसाहटें शुरु हो चुकी थीं। लोग अपने ढंग से बातें गढ़ने लगे थे। दिन गुज़रते रहे।

एक दिन वज्र टूट पड़ा। पूरा का पूरा आसमान हमारे घर के ऊपर औंधे मुँह आ गिरा। विपत्ति के काले बादलों ने ऐसे ढँका कि आज तक अँधेरा पसरा हुआ है। बहुत छटपटाई थी कुमुद। जामुन की तरह काले हो गए थे उसके होंठ। सारी देह

नीली पड़ गई थी। इसके पहले कि कोई समझे-बूझे चली गई कुमुद। सुबह का समय था। जाड़े की सुबह को अपनी मौत की आँच से पिघलाकर पानी-पानी कर गई कुमुद। रोने के लिए भी समय नहीं दिया। आनन-फानन में कुमुद का दाह-संस्कार हुआ। इस बुरी घड़ी में पट्टीदारों ने साथ दिया। कुमुद की अकाल-मृत्यु ने सबको सकते में डाल दिया था। कुल की मर्यादा ढँकने-छिपाने में लगे थे सारे लोग। पर कलंक छिपता है भला! जब चन्द्रमा का कलंक नहीं छिप सका तो...।

मैं ही अपनी ज़िम्मेदारी नहीं निभा सकी। बड़ी भौजाई थी मैं। मुझे ही सँभालना था। मुझे ही अपनी आँखें खोलकर अपनी गृहस्थी को... अपने घर-बार को देखना था। अपने परिजनों की देख-रेख करनी थी। जो मैं नहीं कर सकी। और कुसुम? कुसुम को तो काठ मार गया था। पत्थर बन गई थी वह। उस दिन जो कुम्हलाई कुसुम, सो आज तक उसके चेहरे पर चमक नहीं देख सका कोई। उसका तो सब कुछ उजड़ गया। पूरा जीवन ही जड़ से उखड़ कर इस तूफ़ान में उड़ गया। मैं बहुत कुछ कहना चाहती हूँ। पर क्या कहूँ? अब सब कहना-सुनना बेकार है। अब मेरी समझ में आया कि मुसीबतों से जूझने के लिए ढीठ रीढ़ चाहिए। मुझ जैसी औरतों की रीढ़ तो जनमते ही सौरी घर में तोड़ दी जाती है।

मैंने अब तक जो कुछ कहा है, उसमें बहुत सारा झूठ शामिल है। अब कोई पूछे कि झूठ क्यों? तो झूठ इसलिए कि मुझे झूठ की छाया में जीने की आदत पड़ चुकी है। सच जब रौरव नरक की आग में जलाए, तो साँस लेने के लिए झूठ की छाया में जाना पड़ता है। इसे वही समझ सकता है, जिसे बिना

किसी अपराध के दंड भोगना पड़े। मेरा यह तर्क बेकार और वाहियात हो सकता है, पर यह सच है कि आँधी में दीया-बाती की तरह टिमटिमाती रही हूँ मैं।

मुझे जबरन वापस ससुराल भेजा गया। मुझे विदा कराने कोई नहीं आया था। भौजी और भइया ने मौन साध लिया। बाबूजी इस बात पर राज़ी नहीं थे कि मैं देवघाट में रहूँ। वह नहीं चाहते थे कि पहाड़ सा मेरा जीवन उनकी छाती पर बोझ बना रहे। उन्हें मेरी नहीं, गाँव-जवार, कुल-ख़ानदान की चिंता थी। वह सब कुछ को भाग्य का खेल मानते रहे। उन्होंने साफ़-साफ़ कहा था-'जीवन भर अपनी ब्याहता बेटी को अपने घर रखकर दुनिया को कौन सा मुँह दिखाऊँगा? किसके-किसके सवालों के जवाब देता रहूँगा?'

भइया मुझे मेरी ससुराल छोड़ आए। यदुनाथ दुबे बम्बई में थे। साल भर बाद वह गाँव लौटे, तो मुझे साथ लेकर बम्बई गए। मैं पति के साथ परदेस पहुँची। देसी कट्टों से भरा एक बक्सा भी मेरे साथ-साथ बम्बई आया था। इन्हीं कट्टों को बेचकर यदुनाथ दुबे ने अपना व्यवसाय शुरु किया। शराब, मटका, हथियार, फिल्मों में एक्स्ट्रा डांसरों की सप्लाई जैसे कई धंधों से गुज़रते हुए एक बड़े व्यवसाय की नींव पड़ी। बम्बई के एक उपनगर में बँगला, गाड़ियाँ, बड़ा-सा दफ्तर और लाखों-लाख का लेन-देन। इस बीच एक कमसिन औरत को ले आया यदुनाथ दुबे। अब मुझ जैसी नौकरानी के साथ पूरा जीवन तो वह काट नहीं सकता था। अँग्रेज़ी बोलनेवाली इस ख़ूबसूरत औरत ने देखते-देखते दुबे के संसार को वैभव से भर दिया। वह दुबे के साथ शराब पीती, पार्टियों में जाती और व्यवसाय के हित में लोगों को

फाँसती। मैंने बम्बई पहुँचते ही साफ-साफ दुबे से कह दिया था कि मैं रोटी पका सकती हूँ, कपड़े धो सकती हूँ, तुम्हारा शरीर थक जाए तो गोमूत्र साफ कर सकती हूँ, पर तुम्हारे साथ सो नहीं सकती। मेरी देह और मेरा मन पाने का अधिकार तुम खो चुके हो। तुमने मेरी कुमद की देह को नष्ट किया है। तुमने उसकी निर्मल देह को वासना की आग में झोंका है। उसकी नासमझ उम्र और भोले मन को नरक की आग में जलाया है।

यदुनाथ दुबे अपने लिए नई औरत ढूँढ़कर लाया, तो न उसे कोई झिझक थी और ना ही मुझे कोई चिंता। वह ताक़तवर औरत थी। उसने सब कुछ देखते-देखते हासिल कर लिया। हाँ, मुझे लेकर वह निर्विकार थी। उसने मुझसे कभी कुछ नहीं पूछा। मैं बँगले के पिछले हिस्से में रहने लगी थी। दुबे की पाप की कमाई से अन्न खाकर प्राण रक्षा का पाप करती रही मैं। मैंने झूठ कहा कि वे यहाँ आना चाहते थे। मैंने यदुनाथ दुबे नाम के इस राक्षस को कुमुद की मौत के बाद कभी आप कहकर नहीं पुकारा। न तो उसे यहाँ आना था और ना ही वह यहाँ आना चाहता था। उसके व्यवसाय, उसके धन, उसके हुनर से मेरा कोई लेना-देना नहीं। मैंने उसे सिर्फ इतना भर कहा था कि मैं देवघाट जा रही हूँ। वह पल भर के लिए अचम्भित हुआ था। मुझे सिर से पाँव तक देखा था और मुस्कुरा उठा था। ज़हर बुझी मुस्कान थी वह। मैंने शुरुआत में जो कुछ कहा है वे सब मेरी कल्पनाएँ हैं। क्या करती मैं? पच्चीस साल में ढेरों कल्पनाएँ करती रही हूँ। इन कल्पनाओं को सुनाने बैठूँ तो कई युग निकल जाएँ। इन्हीं कल्पनाओं के सहारे बेमतलब जीवित रही

हूँ। इन्हीं कल्पनाओं से... इस झूठ से मुक्त होकर अब जीना चाहती हूँ मैं।

यह भोंदू सा दिखनेवाला नीलेश ही वह देवदूत है, जिसने मेरी मुक्ति की राह खोल दी है। वह रेलवे की नौकरी का इन्टरव्यु देने बम्बई पहुँचा। मेरी ससुराल के गाँव जाकर बम्बई का पता लिया और एक दिन मेरे सामने खड़ा हो गया। उसी ने बताया कि बाबा सारी-सारी रात अकेले में रोते हैं। बाबूजी और अम्मा की भींगी हुई आँखों से हर रोज़ आँसू बनकर आप टपकती हैं। मेरी दिदिया आपके बारे में ढेरों प्यारे-प्यारे क़िस्से गढ कर सुनाती रहती है... और... बुआ, मैं आपको विदा कराने आया हूँ। साथ लेकर ही जाऊँगा।

मैंने देवघाट से वापस नहीं जाने का निर्णय लिया है। मेरे बाबूजी पण्डित धूर्जटि पाण्डेय भी नहीं चाहते कि उनकी बेटी वापस जाए। मैं भी दुबे से अपने सम्बन्ध पर मृत्यु की तरह ताला जड़कर और चाबी समुद्र में फेंककर आई हूँ।

~Ω~

3. मनुष्य का परम धर्म

~ प्रेमचन्द

<u>लेखक परिचयः-</u>

प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई 1980 को वाराणसी जिले (उत्तर प्रदेश) के लमही गाँव में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। उनकी माता का नाम आनन्दी देवी तथा पिता का नाम मुंशी अजायबराय था जो लमही में डाक मुंशी थे। उनका वास्तविक नाम धनपतराय श्रीवास्तव था। प्रेमचंद की आरम्भिक शिक्षा फ़ारसी में हुई। जब वे सात साल के थे तभी उनकी माता का स्वर्गवास हो गया। जब पन्द्रह वर्ष के हुए तब उनका विवाह कर दिया गया।

इसके कारण उनका प्रारम्भिक जीवन संघर्षमय रहा। उनकी बचपन से ही पढ़ने में बहुत रुचि थी। 13 वर्ष की उम्र में ही उन्होंने तिलिस्म-ए-होशरुबा पढ़ लिया। 1920-36 तक प्रेमचंद लगभग दस से अधिक कहानियाँ हर साल लिखते रहे। मृत्यु के बाद उनकी कहानियाँ मानसरोवर के नाम से 8 खंडों में प्रकाशित हुईं। उपन्यास और कहानी के अतिरिक्त वैचारिक निबंध, संपादकीय, पत्रिका के रूप में भी उनका विपुल लेखन उपलब्ध है। उनका स्वास्थ्य निरन्तर बिगड़ता गया। लम्बी बीमारी के बाद 8 अक्टूबर 1936 को उनका निधन हो गया।

~*~

होली का दिन है। लड्डू के भक्त और रसगुल्ले के प्रेमी पंडित मोटेराम शास्त्री अपने आँगन में एक टूटी खाट पर सिर झुकाये, चिंता और शोक की मूर्ति बने बैठे हैं। उनकी सहधर्मिणी उनके निकट बैठी हुई उनकी ओर सच्ची सहवेदना

की दृष्टि से ताक रही है और अपनी मृदुवाणी से पति की चिंताग्नि को शांत करने की चेष्टाकर रही है।

पंडितजी बहुत देर तक चिंता में डूबे रहने के पश्चात् उदासीन भाव से बोले- नसीबा ससुरा ना जाने कहाँ जाकर सो गया। होली के दिन भी न जागा !

पंडिताइन- दिन ही बुरे आ गये हैं। इहाँ तो जौन ते तुम्हारा हुकुम पावा ओही घड़ी ते साँझ-सबेरे दोनों जून सूरज नरायन से ही बरदान माँगा करि हैं कि कहूँ से बुलौवा आवै, सैकड़न दिया तुलसी माई का चढ़ावा, मुदा सब सोय गये। गाढ़ परे कोऊ काम नाहीं आवत है।

मोटेराम- कुछ नहीं, ये देवी-देवता सब नाम के हैं। हमारे बखत पर काम आवें तब हम जानें कि कोई देवी-देवता। सेंत-मेंत में मालपुआ-हलुवा खानेवाले तो बहुत हैं।

पंडिताइन- का सहर-भर माँ अब कोई भलमनई नाहीं रहा? सब मरि गये ?

मोटेराम- सब मर गये बल्कि सड़ गये। दस-पाँच हैं तो साल भर में दो-एक बार जीते हैं। वह भी बहुत हिम्मत की तो रुपये की तीन सेर मिठाई खिला दी। मेरा बस चलता तो इन सबों को सीधे कालेपानी भिजवा देता, यह सब इसी अरियासमाज की करनी है।

पंडिताइन- तुम हूँ तो घर माँ बैठे रहत हो। अब ई जमाने में कोई ऐसन दानी नाहीं है कि घर बैठे नेवता भेज देय। कभूँ-कभूँ जुबान लड़ा दिया करौ।

मोटेराम- तुम कैसे जानती हो कि मैंने जबान नहीं लड़ाई? ऐसा कौन रईस इस शहर में है, जिसके यहाँ जाकर मैंने

आशीर्वाद न दिया हो मगर कौन ससुरा सुनता है सब अपने-अपने रंग में मस्त हैं।

इतने में पंडित चिन्तामणिजी ने पदार्पण किया। यह पंडित मोटेरामजी के परम मित्र थे। हाँ, अवस्था कुछ कम थी और उसी के अनुकूल उनकी तोंद भी कुछ उतनी प्रतिभाशाली न थी।

मोटेराम- कहो मित्र, क्या समाचार लाये? है कहीं डौल?

चिंतामणि- डौल नहीं, अपना सिर है! अब वह नसीब ही नहीं रहा। मोटेराम- घर ही से आ रहे हो ?

चिंतामणि- भाई, हम तो साधू हो जायँगे। जब इस जीवन में कोई सुख ही नहीं रहा तो जीकर क्या करेंगे? अब बताओ कि आज के दिन अब उत्तम पदार्थ न मिले तो कोई क्योंकर जिये।

मोटेराम- हाँ भाई, बात तो यथार्थ कहते हो।

चिंतामणि- तो अब तुम्हारा किया कुछ न होगा? साफ-साफ कहो, हम संन्यास ले लें।

मोटेराम- नहीं मित्र, घबराओ मत। जानते नहीं हो, बिना मरे स्वर्ग नहीं मिलता। तर माल खाने के लिए कठिन तपस्या करनी पड़ती है, हमारी राय है कि चलो, इसी समय गंगातट पर चलें और वहाँ व्याख्यान दें। कौन जाने किसी सज्जन की आत्मा जागृत हो जाय।

चिंतामणि- हाँ, बात तो अच्छी है; चलो चलें।

दोनों सज्जन उठकर गंगाजी की ओर चले, प्रातःकाल था। सहस्रो मनुष्य स्नान कर रहे थे। कोई पाठ करता था। कितने ही लोग पंडों की चौकियों पर बैठे तिलक लगा रहे थे। कोई-कोई तो गीली धोती ही पहने घर जा रहे थे।

दोनों महात्माओं को देखते ही चारों तरफ से 'नमस्कार', 'प्रणाम' और 'पालागन' की आवाजें आने लगीं। दोनों मित्र इन अभिवादनों का उत्तर देते गंगातट पर जा पहुँचे और स्नानादि में प्रवृत्त हो गये। तत्पश्चात् एक पंडे की चौकी पर भजन गाने लगे। वह ऐसी विचित्र घटना थी कि सैकड़ों आदमी कौतूहलवश आकर एकत्रित हो गये। जब श्रोताओं की संख्या कई सौ तक पहुँच गयी तो पंडित मोटेराम गौरवयुक्त भाव से बोले- सज्जनों, आपको ज्ञात है कि जब ब्रह्मा ने इस असार संसार की रचना की तो ब्राह्मणों को अपने मुख से निकाला। किसी को इस विषय में शंका तो नहीं है।

श्रोतागण- नहीं महाराज, आप सर्वथा सत्य कहते हो। आपको कौन काट सकता है।

मोटेराम- तो ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से निकले, यह निश्चय है। इसलिए मुख मानव शरीर का श्रेष्ठतम भाग है। अतएव मुख को सुख पहुँचाना, प्रत्येक प्राणी का परम कर्त्तव्य है। है या नहीं? कोई काटता है हमारे वचन को? सामने आये। हम उसे शास्त्रह का प्रमाण दे सकते हैं।

श्रोतागण- महाराज, आप ज्ञानी पुरुष हो। आपको काटने का साहस कौन कर सकता है?

मोटेराम- अच्छा, तो जब यह निश्चय हो गया कि मुख को सुख देना प्रत्येक प्राणी का परम धर्म है, तो क्या यह देखना कठिन है कि जो लोग मुख से विमुख हैं, वे दुःख के भागी हैं। कोई काटता है इस वचन को?

श्रोतागण-महाराज, आप धन्य हो, आप न्यायशास्त्रा के पंडित हो।

मोटेराम- अब प्रश्न यह होता है कि मुख को सुख कैसे दिया जाय? हम कहते हैं- जैसी तुममें श्रद्धा हो, जैसा तुममें सामर्थ्य हो। इसके अनेक प्रकार हैं, देवताओं के गुण गाओ, ईश्वर- वंदना करो, सत्संग करो और कठोर वचन न बोलो। इन बातों से मुख को सुख प्राप्त होगा। किसी को विपत्ति में देखो तो उसे ढाढ़स दो। इससे मुख को सुख होगा; किंतु इन सब उपायों से श्रेष्ठ, सबसे उत्तम, सबसे उपयोगी एक और ही ढंग है। कोई आप में ऐसा है जो उसे बतला दे? है कोई, बोले।

श्रोतागण- महाराज, आपके सम्मुख कौन मुँह खोल सकता है। आप ही बताने की कृपा कीजिए।

मोटेराम- अच्छा, तो हम चिल्लाकर, गला फाड़-फाड़कर कहते हैं कि वह इन सब विधियों से श्रेष्ठ है। उसी भाँति जैसे चंद्रमा समस्त नक्षत्रों में श्रेष्ठ है।

श्रोतागण- महाराज, अब विलम्ब न कीजिए। यह कौन-सी विधि है?

मोटेराम- अच्छा सुनिए, सावधान होकर सुनिए। वह विधि है मुख को उत्तम पदार्थों का भोजन करवाना, अच्छी-अच्छी वस्तु खिलाना। कोई काटता है हमारी बात को? आये, हम उसे वेद-मंत्रों का प्रमाण दें।

एक मनुष्य ने शंका की- यह समझ में नहीं आता कि सत्य भाषण से मिथ्य-भाषण क्योंकर मुख के लिए अधिक सुखकारी हो सकता है? कई मनुष्यों ने कहा- हाँ-हाँ, हमें भी यही शंका है। महाराज, इस शंका का समाधान कीजिए।

मोटेराम- और किसी को कोई शंका है? हम बहुत प्रसन्न होकर उसका निवारण करेंगे। सज्जनो, आप पूछते हैं कि उत्तम

पदार्थों का भोजन करना और कराना क्योंकर सत्यभाषण से अधिक सुखदायी है। मेरा उत्तर है कि पहला रूप प्रत्यक्ष है और दूसरा अप्रत्यक्ष। उदाहरणतः कल्पना कीजिए कि मैंने कोई अपराध किया। यदि हाकिम मुझे बुलाकर नम्रतापूर्वक समझाये कि पंडितजी, आपने यह अच्छा काम नहीं किया, आपको ऐसा उचित नहीं था, तो उसका यह दंड मुझे सुमार्ग पर लाने में सफल न होगा। सज्जनो, मैं ऋषि नहीं हूँ, मैं दीन-हीन मायाजाल में फँसा हुआ प्राणी हूँ। मुझ पर इस दंड का कोई प्रभाव न होगा। मैं हाकिम के सामने से हटते ही फिर उसी कुमार्ग पर चलने लगूँगा। मेरी बात समझ में आती है? कोई इसे काटता है?

श्रोतागण- महाराज! आप विद्यासागर हो, आप पंडितों के भूषण हो। आपको धन्य है।

मोटेराम- अच्छा, अब उसी उदाहरण पर फिर विचार करो। हाकिम ने बुलाकर तत्क्षण कारागार में डाल दिया और वहाँ मुझे नाना प्रकार के कष्ट दिये गये। अब जब मैं छुटूँगा, तो बरसों तक यातनाओं को याद करता रहूँगा और सम्भवतः कुमार्ग को त्याग दूँगा। आप पूछेंगे, ऐसा क्यों है? दंड दोनों ही हैं, तो क्यों एक का प्रभाव पड़ता है और दूसरे का नहीं। इसका कारण यही है कि एक का रूप प्रत्यक्ष है और दूसरे का गुप्त। समझे आप लोग?

श्रोतागण- धन्य हो कृपानिधान ! आपको ईश्वर ने बड़ी बुद्धि-सामर्थ्य दी है।

मोटेराम- अच्छा, तो अब आपका प्रश्न होता है उत्तम पदार्थ किसे कहते हैं? मैं इसकी विवेचना करता हूँ। जैसे भगवान् ने नाना प्रकार के रंग नेत्रों के विनोदार्थ बनाये, उसी

प्रकार मुख के लिए भी अनेक रसों की रचना की; किंतु इन समस्त रसों में श्रेष्ठ कौन है? यह अपनी-अपनी रुचि है; लेकिन वेदों और शास्त्रों के अनुसार मिष्ट रस माना जाता है। देवता गण इसी रस पर मुग्ध होते हैं, यहाँ तक कि सच्चिदानंद, सर्व शक्तिमान् भगवान् को भी मिष्ट पाकों ही से अधिक रुचि है। कोई ऐसे देवता का नाम बता सकता है जो नमकीन वस्तुओं को ग्रहण करता हो? है कोई जो ऐसी एक भी दिव्य ज्योति का नाम बता सके। कोई नहीं है। इसी भाँति खट्टे, कड़ुवे और चरपरे, कसैले पदार्थों से भी देवताओं को प्रीति नहीं है।

श्रोतागण- महाराज, आपकी बुद्धि अपरम्पार है।

मोटेराम- तो यह सिद्ध हो गया कि मीठे पदार्थ सब पदार्थों में श्रेष्ठ है। अब आपका पुनः प्रश्न होता है कि क्या समग्र मीठी वस्तुओं से मुख को समान आनंद प्राप्त होता है। यदि मैं कह दूँ 'हाँ' तो आप चिल्ला उठोगे कि पंडितजी तुम बावले हो, इसलिए मैं कहूँगा 'नहीं' और बारम्बार 'नहीं'। सब मीठे पदार्थ समान रोचकता नहीं रखते। गुड़ और चीनी में बहुत भेद है। इसलिए मुख को सुख देने के लिए हमारा परम कर्त्तव्य है कि हम उत्तम-से-उत्तम मिथ्य-पाकों का सेवन करें और करायें। मेरा अपना विचार है कि यदि आपके थाल में जौनपुर की अमृतियाँ, आगरे के मोतीचूर, मथुरा के पेड़े, बनारस की कलाकंद, लखनऊ के रसगुल्ले, अयोध्या के गुलाबजामुन और दिल्ली का हलुआ-सोहन हो तो यह ईश्वर-भोग के योग्य है। देवतागण उस पर मुग्ध हो जायँगे। और जो साहसी, पराक्रमी जीव ऐसे स्वादिष्ट थाल ब्राह्मणों को जिमायेगा, उसे सदेह स्वर्गधाम प्राप्त होगा। यदि आपको श्रद्धा है तो हम आपसे

अनुरोध करेंगे कि अपना धर्म अवश्य पालन कीजिए, नहीं तो, मनुष्य बनने का नाम न लीजिए।

पंडित मोटेराम का भाषण समाप्त हो गया। तालियाँ बजने लगीं। कुछ सज्जनों ने इस ज्ञान-वर्षा और धर्मोपदेश से मुग्ध होकर उन पर फूलों की वर्षा की। तब चिंतामणि ने अपनी वाणी को विभूषित किया-

'सज्जनो, आपने मेरे परम मित्र पंडित मोटेराम का प्रभावशाली व्याख्यान सुना और अब मेरे खड़े होने की आवश्यकता न थी; परन्तु जहाँ मैं उनसे और सभी विषयों में सहमत हूँ, वहाँ उनसे मुझे थोड़ा मतभेद भी है। मेरे विचार में यदि आपके हाथ में केवल जौनपुर की अमृतियाँ हों तो वह पंचमेल मिठाइयों से कहीं सुखवर्द्धक, कहीं स्वादपूर्ण और कहीं कल्याणकारी होगा। इसे मैं शास्त्रोक्त सिद्ध करता हूँ।

मोटेराम ने सरोष होकर कहा- तुम्हारी यह कल्पना मिथ्या है। आगरे के मोतीचूर और दिल्ली के हलुवा-सोहन के सामने जौनपुर की अमृतियों की तो गणना ही नहीं है।

चिंता.- प्रमाण से सिद्ध कीजिए?

मोटेराम- प्रत्यक्ष के लिए प्रमाण?

चिंता.- यह तुम्हारी मूर्खता है।

मोटेराम- तुम जन्म-भर खाते ही रहे, किंतु खाना न आया।

इस पर चिंतामणि ने अपनी आसनी मोटेराम पर चलायी। शास्त्रीजी ने वार खाली दिया और चिंतामणि की ओर मस्त हाथी के समान झपटे; किंतु उपस्थित सज्जनों ने दोनों महात्माओं को अलग-अलग कर दिया।

~Ω~

4. काबुलीवाला

- रवींद्रनाथ टैगोर

<u>लेखक परिचय:-</u>

रबीन्द्रनाथ ठाकुर का जन्म 7 मई 1861 को कोलकाता के जोड़ासाँको ठाकुरबाड़ी में हुआ। उनके पिता देवेन्द्रनाथ टैगोर और माता शारदा देवी थीं। उनकी आरम्भिक शिक्षा प्रतिष्ठित सेंट जेवियर स्कूल में हुई। उन्होंने बैरिस्टर बनने की इच्छा में 1878 में इंग्लैंड के ब्रिजटोन में पब्लिक स्कूल में नाम लिखाया फिर लन्दन विश्वविद्यालय में कानून का अध्ययन किया किन्तु 1880 में बिना डिग्री प्राप्त किए ही स्वदेश पुनः लौट आए। सन् 1883 में मृणालिनी देवी के साथ उनका विवाह हुआ। टैगोर की माता का निधन उनके बचपन में हो गया था अतः उनका लालन-पालन अधिकांश नौकरों द्वारा ही किया गया था। टैगोर ने ड्राइंग शरीर विज्ञान भूगोल और इतिहास साहित्य गणित संस्कृत और अंग्रेजी को अपने सबसे पसंदीदा विषय का अध्ययन किया था। हालाँकि टैगोर ने औपचारिक शिक्षा से नाराजगी व्यक्त की और उनके अनुसार उचित शिक्षण जिज्ञासा है।

~*~

मेरी पाँच वर्ष की छोटी लड़की मिनी से पल भर भी बात किए बिना नहीं रहा जाता। दुनिया में आने के बाद भाषा सीखने में उसने सिर्फ एक ही वर्ष लगाया होगा। उसके बाद से जितनी देर तक सो नहीं पाती है, उस समय का एक पल भी वह चुप्पी में नहीं खोती। उसकी माता बहुधा डाँट-फटकारकर उसकी चलती हुई जबान बन्द कर देती है; किन्तु मुझसे ऐसा नहीं होता,

मिनी का मौन मुझे ऐसा अस्वाभाविक-सा प्रतीत होता है, कि मुझसे वह अधिक देर तक सहा नहीं जाता और यही कारण है कि मेरे साथ उसके भावों का आदान-प्रदान कुछ अधिक उत्साह के साथ होता रहता है।

सवेरे मैंने अपने उपन्यास के सत्रहवें अध्याय में हाथ लगाया ही था कि इतने में मिनी ने आकर कहना आरम्भ कर दिया-''बाबूजी! रामदयाल दरबान कल काक को कौआ कहता था। वह कुछ जानता ही नहीं, न बाबूजी?''

विश्व की भाषाओं की विभिन्नता के विषय में मेरे कुछ बताने से पहले ही उसने दूसरा प्रसंग छेड़ दिया- ''बाबूजी! भोला कहता था आकाश मुंह से पानी फेंकता है, इसी से बरसा होती है। अच्छा बाबूजी, भोला झूठ-मूठ कहता है न? खाली बक-बक किया करता है, दिन-रात बकता रहता है।'

इस विषय में मेरी राय की तनिक भी राह न देख करके, चट से धीमे स्वर में एक जटिल प्रश्न कर बैठी, बाबूजी, मां तुम्हारी कौन लगती है?''

मन-ही-मन में मैंने कहा साली और फिर बोला- ''मिनी, तू जा, भोला के साथ खेल, मुझे अभी काम है, अच्छा।''

तब उसने मेरी मेज के पार्श्व में पैरों के पास बैठकर अपने दोनों घुटने और हाथों को हिला-हिलाकर बड़ी शीघ्रता से मुंह चलाकर 'अटकन-बटकन दही चटाके' कहना आरम्भ कर दिया। जबकि मेरे उपन्यास के अध्याय में प्रतापसिंह उस समय कंचनमाला को लेकर रात्रि के प्रगाढ़ अन्धकार में बन्दीगृह के ऊंचे झरोखे से नीचे कलकल करती हुई सरिता में कूद रहे थे। मेरा घर सड़क के किनारे पर था, सहसा मिनी अपने अटकन-

बटकन को छोड़कर कमरे की खिड़की के पास दौड़ गई, और जोर-जोर से चिल्लाने लगी, ''काबुलवाला, ओ काबुलवाला।''

मैले-कुचैले ढीले कपड़े पहने, सिर पर कुल्ला रखे, उस पर साफा बांधे कन्धे पर सूखे फलों की मैली झोली लटकाये, हाथ में चमन के अंगूरों की कुछ पिटारियाँ लिये, एक लम्बा-तगड़ा-सा काबुली मन्द चाल से सड़क पर जा रहा था। उसे देखकर मेरी छोटी बेटी के हृदय में कैसे भाव उदय हुए वह बताना असम्भव है। उसने जोरों से पुकारना शुरू किया। मैंने सोचा, अभी झोली कन्धे पर डाले, सर पर एक मुसीबत आ खड़ी होगी और मेरा सत्रहवां अध्याय आज अधूरा रह जायेगा।

किन्तु मिनी के चिल्लाने पर ज्योंही काबुली ने हँसते हुए उसकी ओर मुंह फेरा और घर की ओर बढ़ने लगा; त्योंही मिनी भय खाकर भीतर भाग गई। फिर उसका पता ही नहीं लगा कि कहाँ छिप गई? उसके छोटे से मन में वह अन्धविश्वास बैठ गया था कि उस मैली-कुचैली झोली के अन्दर ढूंढ़ने पर उस जैसी और भी जीती-जागती बच्ची निकल सकती हैं।

इधर काबुली ने आकर मुस्कराते हुए मुझे हाथ उठाकर अभिवादन किया और खड़ा हो गया। मैंने सोचा, वास्तव में प्रतापसिंह और कंचनमाला की दशा अत्यन्त संकटापन्न है, फिर भी घर में बुलाकर इससे कुछ न खरीदना अच्छा न होगा।

कुछ सौदा खरीदा गया। उसके बाद मैं उससे इधर-उधर की बातें करने लगा। रहमत, रूस, अँग्रेज, सीमान्त रक्षा के बारे में गप-शप होने लगी।

अन्त में उठकर जाते हुए उसने अपनी मिली-जुली भाषा में पूछा- ''बाबूजी, आपकी बच्ची कहाँ गई?''

मैंने मिनी के मन से व्यर्थ का भय दूर करने के अभिप्राय से उसे भीतर से बुलवा लिया। वह मुझसे बिल्कुल लगकर काबुली के मुख और झोली की ओर सन्देहात्मक दृष्टि डालती हुई खड़ी रही। काबुली ने झोली में से किसमिस और खुबानी निकालकर देनी चाहीं, पर उसने न लीं और दुगुने सन्देह के साथ मेरे घुटनों से लिपट गई। उसका पहला परिचय इस प्रकार हुआ।

इस घटना के कुछ दिन बाद एक दिन सवेरे मैं किसी आवश्यक कार्यवश बाहर जा रहा था? देखूं तो मेरी बिटिया दरवाजे के पास बैंच पर बैठी हुई काबुली से हँस-हँसकर बातें कर रही है और काबुली उसके पैरों के समीप बैठा-बैठा मुस्कराता हुआ, उन्हें ध्यान से सुन रहा है और बीच-बीच में अपनी राय मिली-जुली भाषा में व्यक्त करता जाता है। मिनी को अपने पांच वर्ष के जीवन में, बाबूजी के सिवा, ऐसा धैर्य वाला श्रोता शायद ही कभी मिला हो। देखा तो, उसका फिराक का अग्रभाग बादाम-किसमिस से भरा हुआ है। मैंने काबुली से कहा- 'इसे यह सब क्यों दे दिया? अब कभी मत देना?' कहकर कुर्ते की जेब में से एक अठन्नी निकालकर उसे दी। उसने बिना किसी हिचक के अठन्नी लेकर अपनी झोली में रख ली?

कुछ देर बाद, घर लौटकर देखता हूँ तो उस अठन्नी ने बड़ा भारी उपद्रव खड़ा कर दिया है।

मिनी की माँ एक सफेद चमकीला गोलाकार पदार्थ हाथ में लिये डांट-डपटकर मिनी से पूछ रही थी- ''तूने यह अठन्नी पाई कहाँ से, बता?''

मिनी ने कहा- ''काबुल वाले ने दी है।''

''काबुलवाले से तूने अठन्नी ली कैसे, बता....

मिनी ने रोने का उपक्रम करते हुए कहा- ''मैंने मांगी नहीं थी, उसने आप ही दी है।''

मैंने जाकर मिनी की उस अकस्मात मुसीबत से रक्षा की, और उसे बाहर ले आया। मालूम हुआ कि काबुली के साथ मिनी की यह दूसरी ही भेंट थी, सो बात नहीं। इस दौरान में वह रोज आता रहा है और पिस्ता-बादाम की रिश्वत दे-देकर मिनी के छोटे से हृदय पर बहुत अधिकार कर लिया है।

देखा कि इस नई मित्रता में बंधी हुई बातें और हँसी ही प्रचलित है। जैसे मेरी बिटिया, रहमत को देखते ही, हँसती हुई पूछती- 'काबुल वाला और काबुल वाला, तुम्हारी झोली के भीतर क्या है?' काबुली जिसका नाम रहमत था, एक अनावश्यक चन्द्र-बिन्दु जोड़कर मुस्कराता हुआ उत्तर देता- 'हाँ बिटिया उसके परिहास का रहस्य क्या है, यह तो नहीं कहा जा सकता; फिर भी इन नए मित्रों को इससे तनिक विशेष खेल-सा प्रतीत होता है और जाड़े के प्रभात में एक सयाने और एक बच्ची की सरल हँसी सुनकर मुझे भी बड़ा अच्छा लगता।

उन दोनों मित्रों में और भी एक-आध बात प्रचलित थी। रहमत मिनी से कहता-''तुम ससुराल कभी नहीं जाना, अच्छा?''

हमारे देश की लड़कियाँ जन्म से ही 'ससुराल' शब्द से परिचित रहती हैं; किन्तु हम लोग तनिक कुछ नई रोशनी के होने के कारण तनिक-सी बच्ची को ससुराल के विषय में विशेष ज्ञानी नहीं बना सके थे, अतः रहमत का अनुरोध वह स्पष्ट रूप से नहीं समझ पाती थी; इस पर भी किसी बात का उत्तर दिये बिना चुप रहना उसके स्वभाव के बिल्कुल ही विरुध्द था। उल्टे वह रहमत से ही पूछती- 'तुम ससुराल जाओगे ?'

रहमत काल्पनिक ससुर के लिए अपना जबर्दस्त घूँसा तानकर कहता- ''हम ससुर को मारेगा।''

सुनकर मिनी 'ससुर' नामक किसी अनजाने जीव की दुरावस्था की कल्पना करके खूब हँसती।

देखते-देखते जाड़े की सुहावनी ऋतु आ गई। पूर्व युग में इसी समय राजा लोग दिग्विजय के लिए कूच करते थे। मैं कलकत्ता छोड़कर कभी कहीं नहीं गया, शायद इसीलिए मेरा मन ब्रह्माण्ड में घूमा करता है। यानी, मैं अपने घर में ही चिर प्रवासी हूँ, बाहरी ब्रह्माण्ड के लिए मेरा मन सर्वदा आतुर रहता है। किसी विदेश का नाम आगे आते ही मेरा मन वहीं की उड़ान लगाने लगता है। इसी प्रकार किसी विदेशी को देखते ही तत्काल मेरा मन सरिता-पर्वत-बीहड़ वन के बीच में एक कुटीर का दृश्य देखने लगता है और एक उल्लासपूर्ण स्वतंत्र जीवन-यात्रा की बात कल्पना में जाग उठती है।

इधर देखा तो मैं ऐसी प्रकृति का प्राणी हूँ, जिसका अपना घर छोड़कर बाहर निकलने में सिर कटता है। यही कारण है कि सवेरे के समय अपने छोटे से कमरे में मेज के सामने बैठकर उस काबुली से गप-शप लड़ाकर बहुत कुछ भ्रमण का काम निकाल लिया करता हूँ। मेरे सामने काबुल का पूरा चित्र खिंच जाता। दोनों ओर ऊबड़खाबड़, लाल-लाल ऊंचे दुर्गम पर्वत हैं और रेगिस्तानी मार्ग, उन पर लदे हुए ऊँटों की कतार जा रही है। ऊँचे-ऊँचे साफे बांधे हुए सौदागर और यात्री कुछ ऊँट की सवारी पर हैं तो कुछ पैदल ही जा रहे हैं। किन्हीं के हाथों में बरछा है, तो कोई बाबा आदम के जमाने की पुरानी बन्दूक थामे

हुए है। बादलों की भयानक गर्जन के स्वर में काबुली लोग अपने मिली-जुली भाषा में अपने देश की बातें कर रहे हैं।

मिनी की माँ बड़ी वहमी तबीयत की है। राह में किसी प्रकार का शोर-गुल हुआ नहीं कि उसने समझ लिया कि संसार भर के सारे मस्त शराबी हमारे ही घर की ओर दौड़े आ रहे हैं? उसके विचारों में यह दुनिया इस छोर से उस छोर तक चोर-डकैत, मस्त, शराबी, सांप, बाघ, रोगों, मलेरिया, तिलचट्टे और अंग्रेजों से भरी पड़ी है। इतने दिन हुए इस दुनिया में रहते हुए भी उसके मन का यह रोग दूर नहीं हुआ।

रहमत काबुली की ओर से भी वह पूरी तरह निश्चिंत नहीं थी। उस पर विशेष नजर रखने के लिए मुझसे बार-बार अनुरोध करती रहती। जब मैं उसके शक को परिहास के आवरण से ढकना चाहता तो मुझसे एक साथ कई प्रश्न पूछ बैठती-'क्या कभी किसी का लड़का नहीं चुराया गया? क्या काबुल में गुलाम नहीं बिकते? क्या एक लम्बे-तगड़े काबुली के लिए एक छोटे बच्चे का उठा ले जाना असम्भव है?' इत्यादि।

मुझे मानना पड़ता कि यह बात नितान्त असम्भव हो सो बात नहीं पर भरोसे के काबिल नहीं। भरोसा करने की शक्ति सब में समान नहीं होती, अत: मिनी की मां के मन में भय ही रह गया लेकिन केवल इसीलिए बिना किसी दोष के रहमत को अपने घर में आने से मना न कर सका।

हर वर्ष रहमत माघ मास में लगभग अपने देश लौट जाता है। इस समय वह अपने व्यापारियों से रुपया-पैसा वसूल करने में तल्लीन रहता है। उसे घर-घर, दुकान-दुकान घूमना पड़ता है, लेकिन फिर भी मिनी से उसकी भेंट एक बार अवश्य

हो जाती है। देखने में तो ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों के मध्य किसी षडयंत्र का श्रीगणेश हो रहा है। जिस दिन वह सेवेरे नहीं आ पाता, उस दिन देखूं तो वह संध्या को हाजिर है। अंधेरे में घर के कोने में उस ढीले-ढाले जामा-पाजामा पहने, झोली वाले लम्बे-तगड़े आदमी को देखकर सचमुच ही मन में अचानक भय-सा पैदा हो जाता है। लेकिन जब देखता हूँ कि मिनी 'ओ काबुल वाला' पुकारती हुई हँसती-हँसती दौड़ी आती है और दो भिन्न-भिन्न आयु के असम मित्रों में वही पुराना हास-परिहास चलने लगता है, तब मेरा सारा हृदय खुशी से नाच उठता है।

एक दिन सवेरे मैं अपने छोटे कमरे में बैठा हुआ नई पुस्तक के प्रूफ देख रहा था। जाड़ा, विदा होने से पूर्व, आज दो-तीन दिन खूब जोरों से अपना प्रकोप दिखा रहा है। जिधर देखो, उधर उस जाड़े की ही चर्चा है। ऐसे जाड़े-पाले में खिड़की में से सवेरे की धूप मेज के नीचे मेरे पैरों पर आ पड़ी। उसकी गर्मी मुझे अच्छी प्रतीत होने लगी। लगभग आठ बजे का समय होगा। सिर से मफलर लपेटे ऊषाचरण सवेरे की सैर करके घर की ओर लौट रहे थे। ठीक इस समय राह में एक बड़े जोर का शोर सुनाई दिया।

देखूँ तो, अपने उस रहमत को दो सिपाही बाँधे लिये जा रहे हैं। उनके पीछे बहुत से तमाशाही बच्चों का झुँड चला आ रहा है। रहमत के ढीले-ढाले कुर्ते पर खून के दाग हैं और एक सिपाही के हाथ में खून से लथपथ छुरा। मैंने द्वार से बाहर निकलकर सिपाही को रोक लिया, पूछा-'क्या बात है?'

कुछ सिपाही से और कुछ रहमत से सुना कि हमारे एक पड़ोसी ने रहमत से रामपुरी चादर खरीदी थी। उसके कुछ

रुपये उसकी ओर बाकी थे, जिन्हें देने से उसने साफ इन्कार कर दिया। बस इसी पर दोनों में बात बढ़ गई और रहमत ने छुरा निकालकर घोंप दिया। रहमत उस झूठे बेईमान आदमी के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के अपशब्द सुना रहा था। इतने में 'काबुल वाला! ओ काबुल वाला!' पुकारती हुई मिनी घर से निकल आई। रहमत का चेहरा क्षण-भर में कौतुक हास्य से चमक उठा। उसके कन्धे पर आज झोली नहीं थी। अतः झोली के बारे में दोनों मित्रों की अभ्यस्त आलोचना न चल सकी। मिनी ने आते के साथ ही उसने पूछा- ''तुम ससुराल जाओगे।''

रहमत ने प्रफुल्लित मन से कहा- 'हाँ, वहीं तो जा रहा हूँ।'

रहमत ताड़ गया कि उसका यह जवाब मिनी के चेहरे पर हँसी न ला सकेगा और तब उसने हाथ दिखाकर कहा- 'ससुर को मारता, पर क्या करूँ, हाथ बँधे हुए हैं।'

छुरा चलाने के जुर्म में रहमत को कई वर्ष का कारावास मिला। रहमत का ध्यान धीरे-धीरे मन से बिल्कुल उतर गया। हम लोग अब अपने घर में बैठकर सदा के अभ्यस्त होने के कारण, नित्य के काम-धन्धों में उलझे हुए दिन बिता रहे थे। तभी एक स्वाधीन पर्वतों पर घूमने वाला इन्सान कारागार की प्राचीरों के अन्दर कैसे वर्ष पर वर्ष काट रहा होगा, यह बात हमारे मन में कभी उठी ही नहीं और चंचल मिनी का आचरण तो और भी लज्जाप्रद था। यह बात उसके पिता को भी माननी पड़ेगी। उसने सहज ही अपने पुराने मित्र को भूलकर पहले तो नबी सईस के साथ मित्रता जोड़ी, फिर क्रमशः जैसे-जैसे उसकी वयोवृध्दि होने लगी, वैसे-वैसे सखा के बदले एक के बाद एक उसकी सखियाँ जुटने लगीं और तो क्या, अब वह अपने बाबूजी

के लिखने के कमरे में भी दिखाई नहीं देती। मेरा तो एक तरह से उसके साथ नाता ही टूट गया।

कितने ही वर्ष बीत गये? वर्षों बाद आज फिर एक शरद ऋतु आई है। मिनी की सगाई की बात पक्की हो गई। पूजा की छुट्टियों में उसका विवाह हो जायेगा। कैलाशवासिनी के साथ-साथ अबकी बार हमारे घर की आनन्दमयी मिनी भी माँ-बाप के घर में अँधेरा करके ससुराल चली जायेगी।

सवेरे दिवाकर बड़ी सज-धज के साथ निकले। वर्षों के बाद शरद ऋतु की यह नई धवल धूप सोने में सुहागे का काम दे रही है। कलकत्ता की संकरी गलियों से परस्पर सटे हुए पुराने ईटझर गन्दे घरों के ऊपर भी इस धूप की आभा ने एक प्रकार का अनोखा सौन्दर्य बिखेर दिया है।

हमारे घर पर दिवाकर के आगमन से पूर्व ही शहनाई बज रही है। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जैसे यह मेरे हृदय की धड़कनों में से रो-रोकर बज रही हो। उसकी करुण भैरवी रागिनी मानो मेरी विच्छेद पीड़ा को जाड़े की धूप के साथ सारे ब्रह्माण्ड में फैला रही है। मेरी मिनी का आज विवाह है। सवेरे से घर बवंडर बना हुआ है। हर समय आने-जाने वालों का तांता बंधा हुआ है। आँगन में बांसों का मंडप बनाया जा रहा है। हरेक कमरे और बरामदे में झाड़फानूस लटकाये जा रहे हैं और उनकी टक-टक की आवाज मेरे कमरे में आ रही है। 'चलो रे', 'जल्दी करो', 'इधर आओ' की तो कोई गिनती ही नहीं है।

मैं अपने लिखने-पढ़ने के कमरे में बैठा हुआ हिसाब लिख रहा था। इतने में रहमत आया और अभिवादन करके खड़ा हो गया। पहले तो मैं उसे पहचान न सका। उसके पास न

तो झोली थी और न पहले जैसे लम्बे-लम्बे बाल और न चेहरे पर पहले जैसी दिव्य ज्योति ही थी। अन्त में उसकी मुस्कान देखकर पहचान सका कि वह रहमत है।

मैंने पूछा- ''क्यों रहमत, कब आये?''

उसने कहा- ''कल शाम को जेल से छूटा हूँ।''

सुनते ही उसके शब्द मेरे कानों में खट से बज उठे। किसी खूनी को मैंने कभी आँखों से नहीं देखा था, उसे देखकर मेरा सारा मन एकाएक सिकुड़-सा गया? मेरी यही इच्छा होने लगी कि आज के इस शुभ दिन में वह इंसान यहाँ से टल जाये तो अच्छा हो।

मैंने उससे कहा-'आज हमारे घर में कुछ आवश्यक काम है, सो आज मैं उसमें लगा हुआ हूँ। आज तुम जाओ, फिर आना।'मेरी बात सुनकर वह उसी क्षण जाने को तैयार हो गया। पर द्वार के पास आकर कुछ इधर-उधर देखकर बोला- 'क्या, बच्ची को तनिक नहीं देख सकता?'

शायद उसे यही विश्वास था कि मिनी अब तक वैसी ही बच्ची बनी है। उसने सोचा हो कि मिनी अब भी पहले की तरह 'काबुलवाला, ओ काबुलवाला' पुकारती हुई दौड़ी चली आयेगी। उन दोनों के पहले हास-परिहास में किसी प्रकार की रुकावट न होगी? यहाँ तक कि पहले की मित्रता की याद करके वह एक पेटी अंगूर और एक कागज के दोने में थोड़ी-सी किसमिस और बादाम, शायद अपने देश के किसी आदमी से माँग-ताँगकर लेता आया था? उसकी पहले की मैली-कुचैली झोली आज उसके पास न थी। मैंने कहा- 'आज घर में बहुत काम है। सो किसी से भेंट न हो सकेगी ?'

मेरा उत्तर सुनकर वह कुछ उदास-सा हो गया। उसी मुद्रा में उसने एक बार मेरे मुख की ओर स्थिर दृष्टि से देखा। फिर अभिवादन करके दरवाजे के बाहर निकल गया। मेरे हृदय में जाने कैसी एक वेदना-सी उठी। मैं सोच ही रहा था कि उसे बुलाऊँ, इतने में देखा तो वह स्वयं ही आ रहा है।

वह पास आकर बोला-'ये अँगूर और कुछ किसमिस, बादाम बच्ची के लिए लाया था, उसको दे दीजियेगा।'

मैंने उसके हाथ से सामान लेकर पैसे देने चाहे, लेकिन उसने मेरे हाथ को थामते हुए कहा-'आपकी बहुत मेहरबानी है बाबू साहब, हमेशा याद रहेगी, पिसा रहने दीजिए।' तनिक रुककर फिर बोला- ''बाबू साहब! आपकी जैसी मेरी भी देश में एक बच्ची है। मैं उसकी याद कर-कर आपकी बच्ची के लिए थोड़ी-सी मेवा हाथ में ले आया करता हूँ। मैं यह सौदा बेचने नहीं आता।'

कहते हुए उसने ढीले-ढाले कुर्ते के अन्दर हाथ डालकर छाती के पास से एक मैला-कुचैला मुड़ा हुआ कागज का टुकड़ा निकाला, और बड़े जतन से उसकी चारों तह खोलकर दोनों हाथों से उसे फैलाकर मेरी मेज पर रख दिया।

देखा कि कागज के उस टुकड़े पर एक नन्हे से हाथ के छोटे से पंजे की छाप है। फोटो नहीं, तेलचित्र नहीं हाथ में थोड़ी सी कालिख लगाकर कागज के ऊपर उसी का निशान ले लिया गया है। अपनी बेटी के इस स्मृति-पत्र को छाती से लगाकर, रहमत हर वर्ष कलकत्ता की गली-कूचों में सौदा बेचने के लिए आता है और तब वह कालिख चित्र मानो उसकी बच्ची के हाथ

का कोमल-स्पर्श, उसके बिछड़े हुए विशाल वक्ष:स्थल में अमृत उड़ेलता रहता है।

देखकर मेरी आँखें भर आईं और फिर मैं इस बात को बिल्कुल ही भूल गया कि वह एक मामूली काबुली मेवा वाला है, मैं एक उच्चवंश का रईस हूँ। तब मुझे ऐसा लगने लगा कि जो वह है, वही मैं हूँ। वह भी एक बाप है और मैं भी। उसकी पर्वतवासिनी छोटी बच्ची की निशानी मेरी ही मिनी की याद दिलाती है। मैंने तत्काल ही मिनी को बाहर बुलवाया; हालांकि इस पर अन्दर घर में आपत्ति की गई, पर मैंने उस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। विवाह के वस्त्रों और अलंकारों में लिपटी हुई बेचारी मिनी मारे लज्जा के सिकुड़ी हुई-सी मेरे पास आकर खड़ी हो गई।

उस अवस्था में देखकर रहमत काबुल पहले तो सकपका गया। उससे पहले जैसी बातचीत न करते बना। बाद में हँसते हुए बोला- ''लल्ली! सास के घर जा रही है क्या?'' मिनी अब सास का अर्थ समझने लगी थी, अत: अब उससे पहले की तरह उत्तर देते न बना। रहमत की बात सुनकर मारे लज्जा के उसके कपोल लाल-सुर्ख हो उठे। उसने मुंह को फेर लिया। मुझे उस दिन की याद आई, जबकि रहमत के साथ मिनी का प्रथम परिचय हुआ था। मन मे एक पीड़ा की लहर दौड़ गई।

मिनी के चले जाने के बाद, एक गहरी सांस लेकर रहमत फर्श पर बैठ गया। शायद उसकी समझ में यह बात एकाएक साफ हो गई कि उसकी बेटी भी इतने दिनों में बड़ी हो गई होगी, और उसके साथ भी उसे अब फिर से नई जान-पहचान करनी पड़ेगी। सम्भवत: वह उसे पहले जैसी नहीं पायेगा। इन

आठ वर्षों में उसका क्या हुआ होगा, कौन जाने? सवेरे के समय शरद की स्निग्ध सूर्य किरणों में शहनाई बजने लगी और रहमत कलकत्ता की एक गली के भीतर बैठा हुआ अफगानिस्तान के मेरु-पर्वत का दृश्य देखने लगा।

मैंने एक नोट निकालकर उसके हाथ में दिया और कहा, 'रहमत, तुम देश चले जाओ, अपनी लड़की के पास। तुम दोनों के मिलन-सुख से मेरी मिनी सुख पायेगी।'

रहमत को रुपये देने के बाद विवाह के हिसाब में से मुझे उत्सव-समारोह के दो-एक अंग छांटकर काट देने पड़े। जैसी मन में थी, वैसी रोशनी नहीं करा सका, अँग्रेजी बाजा भी नहीं आया, घर में औरतें बड़ी बिगड़ने लगीं, सब-कुछ हुआ, फिर भी मेरा विचार है, कि आज एक अपूर्व ज्योत्स्ना से हमारा शुभ समारोह उज्वल हो उठा।

~ Ω ~

5. दृष्टिकोण

~ सुभद्रा कुमारी चौहान

<u>लेखिका परिचय:-</u>

सुभद्रा कुमारी चौहान का जन्म नागपंचमी के दिन इलाहाबाद के निकट निहालपुर नामक गाँव में रामनाथ सिंह के जमींदार परिवार में हुआ था। बाल्यकाल से ही वे कविताएँ रचने लगी थीं। उनकी रचनाएँ राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण हैं। चौहान की चार बहने और दो भाई थे। उनके पिता ठाकुर रामनाथ सिंह शिक्षा के प्रेमी थे और उन्हीं की देख-रेख में उनकी प्रारम्भिक शिक्षा भी हुई। 1919 में खंडवा के ठाकुर लक्ष्मण सिंह के साथ विवाह के बाद वे जबलपुर आ गई थीं। 1921 में गांधी जी के असहयोग आंदोलन में भाग लेने वाली वह प्रथम महिला थीं। वे दो बार जेल भी गई थीं। सुभद्राजी की जीवनी को इनकी पुत्री, सुधा चौहान ने 'मिला तेज से तेज' नामक पुस्तक में लिखी है। सुभद्राजी एक रचनाकार होने के साथ-साथ स्वतंत्र संग्राम की सेनानी भी थीं। बिखरे मोती' उनका पहला कहानी संग्रह है। वे एक सुप्रसिद्द कथाकार के रूप में हिन्दी साहित्य जगत में सुप्रतिष्ठित हैं। 15 फरवरी 1948 को एक कार दुर्घटना में उनका निधन हो गया था।

(1931)'मुकुल' (कविता-संग्रह) के लिए, (1932) 'बिखरे मोती' (कहानी-संग्रह) के लिए दो बार सेकसरिया पारितोषिक मिला। भारतीय डाकतार विभाग ने 6अगस्त 1976 को सुभद्राजी के सम्मान में 25 पैसे का एक डाक-टिकट जारी किया है। भारतीय तटरक्षक सेना ने 28 अप्रैल 2006 को सुभद्रा कुमारी की राष्ट्रप्रेम की भावना को सम्मानित करने के लिए नए

नियुक्त एक तटरक्षक जहाज़ को सुभद्रा कुमारी चौहान का नाम दिया है।

~*~

निर्मला विश्व प्रेम की उपासिका थी। संसार में सब के लिए उसके भाव समान थे। उसके हृदय में अपने पराये का भेद-भाव न था। स्वभाव से ही वह मिलनसार, सरल, हँसमुख और नेक थी। साधारण पढ़ी लिखी थी। अंगरेजी में शायद मैट्रिक पास थी। परन्तु हिन्दी का उसे अच्छा ज्ञान था। साहित्य के संसार में उसका आदर था, और काव्य कुंज की वह एक मनोहारिणी कोकिला थी। निर्मला का जीवन बहुत निर्मल था। वह दूसरों के आचरण को सदा भलाई की ही नज़र से देखती। यदि कोई उसके साथ बुराई भी करने आता तो निर्मला यही सोचती, कदाचित उद्देश्य बुरा न रहा हो; भूल से ही उसने ऐसा किया हो।

पतितों के लिए भी उसका हृदय उदार और क्षमा का भंडार था। यदि वह कभी किसी को कोई अनुचित काम करते देखती, तो भी वह उसका अपमान या तिरस्कार कभी न करती। प्रत्युत मधुरतर व्यवहारों से ही यह उन्हें समझाने और उनकी भूल को उन्हें समझा देने का प्रयत्न करती। कठोर वचन कह के किसी का जी दुखाना निर्मला ने सीखा ही न था। किन्तु इसके साथ ही साथ, जितना वह नम्र, सुशील और दयालु थीं उतनी ही वह आत्माभिमानी, दृढ़ निश्चयी और न्याय-प्रिय भी थी। नौकर-चाकरों के प्रति भी निर्मला का व्यवहार बहुत दया-पूर्ण होता।

एक बार की बात है, उसके घर की एक कहारिन ने तेल चुराकर एक पत्थर की आड़ में रख दिया था। उसकी नीयत यह थी कि घर जाते समय वह बाहर के बाहर ही चुपचाप लेती चली जायगी। किसी कार्यवश रमाकान्त जो उसी समय वहाँ पहुँच गए; तेल पर उनकी दृष्टि पड़ी पत्नी को पुकारकर पूछा- 'निर्मला यहाँ तेल किसने रखा हैं?'

निर्मला ने पास ही खड़ी हुई कहारिन की ओर देखा; उसके चेहरे की रंगत स्पष्ट बतला रही थी कि यह काम उसी का है। किन्तु निर्मला ने पति को जवाब दिया,'मैंने ही रख दिया होगा, उठाने की याद न रही होगी?'

पति के जाने के बाद निर्मला ने कटोरे में जितना तेल था उतना ही और डालकर कहारिन को दे दिया और बोली, 'जब जिस चीज की जरूरत पड़े, माँग लिया करो, मैंने कभी देने से इन्कार तो नहीं किया?' जो प्रभाव, कदाचित् डाँट-फटकार से भी न पड़ता, वह निर्मला के इस मधुर्-दयापूर्ण बर्ताव से पड़ा।

बाबू रमाकान्त जी का स्वभाव इसके बिल्कुल विपरीत था। वे तो डबल एम.ए, एक कालेज के प्रोफ़ेसर, साहित्य-सेवी और देशभक्त, उज्वल चरित्र के नेक और उदार सज्जन पर फिर भी पति-पत्नी के स्वभाव में बहुत विभिन्नता थी। कोई चाहे सच्चे हृदय से भी उनकी भलाई करने आता तो भी उसमें उन्हें कुछ न कुछ बुराई जरूर देख पड़ती। वे सोचते इसकी तह में अवश्य ही कुछ न कुछ भेद है। कुछ न कुछ स्वार्थ होगा। तभी तो यह भलमनसाहत दिखाने आया है। नहीं तो मेरे पास आकर इसे ऐसी बात करने की आवश्यकता ही क्या पड़ी थी?

पतितों को वे बड़ी घृणा की नजर से देखते; उनकी हँसी उड़ाते, गिरने वाले को एक धक्का देकर वे गिरा भले ही दें, किन्तु वह पकड़ कर उसे ऊपर उठा के अपना हाथ अपवित्र नहीं कर सकते थे। वे पतितों की छाया से भी दूर-दूर रहते थे। अपने निकट सम्बन्धियों की भलाई करने में यदि किसी दूसरे की कुछ हानि भी हो जाये तो इसमें उन्हें अफ़सोस न होता था। वे सज्जन होते हुए भी सजनता के कायल न थे। कोई उनके साथ बुराई करता तो उसके साथ उससे दूनी बुराई करने में उन्हें संकोच न होता था।

पति-पत्नी दोनों को अलग खड़ा करके यदि ढूंढा जाता तो अवगुण के नाम से उनमें तिल के बराबर भी धब्बा न मिलता! वाह्य जगत में उनकी तरह सफल जोड़ा, उनके सदृश सुखी जीवन कदाचित् बहुत कम देख पड़ता। दूसरों को उनके सौभाग्य पर ईर्षा, होती थी। उनमें आपस में कभी किसी प्रकार का झगड़ा या अप्रिय व्यवहार न होता। फिर भी दोनों में पद-पर मतभेद होने के कारण उनका जीवन सुखी न रहने पाता।

2

सुबह-शाम, निर्मला दोनों समय घर के काम-काज के बाद मील दो मील तक घूमने के लिए चली जाती थी। इससे शुद्ध वायु के साथ-साथ कुछ समय का एकान्त, उसे कोई नई बात सोचने या लिखने के लिए सहायक होता। किन्तु निर्मला की सास को बहू की यह हवा-खोरी न रुचती थी। उन्हें यह सन्देह होता कि यह घूमने के बहाने न जाने कहाँ-कहाँ जाती होगी; न जाने किससे किससे मिलकर क्या क्या बातें करती होगी। प्रायः वह देखा करतीं कि निर्मला किधर से जाती है। और कहाँ से

लौटती है? एक बार उन्होंने पूछा भी कि,'तुम गईं तो इधर से थीं, उस ओर से कैसे लौटीं?'

निर्मला इसका क्या जवाब देती, हँसकर रह जाती। किन्तु निर्मला की सास बहू की इस चुप्पी का दूसरा ही अर्थ लगातीं। उन्हें निर्मला का आचरण पसन्द न था। उसके चरित्र पर उन्हें पग पग पर सन्देह होता; किन्तु इन मामलों में जब वे स्वयं रमाकान्त को ही उदासीन पातीं तो उन्हें भी मन मसोस कर रह जाना पड़ता था। क्योंकि रमाकान्त के सामने भी निर्मला घूमने निकल जाती और घंटों बाद लौटती। अन्य पुरुषों में उनके सामने मी स्वच्छन्दतापूर्वक बातचीत करती, परन्तु रमाकान्त इस पर उसे ज़रा भी न दबाते।

किन्तु कभी-कभी जब उनसे सहन न होता तो वे रमाकान्त से कुछ न कुछ कह बैठतीं तो भी वे यही कह कर कि,'इसमें क्या बुराई है' टाल देते। उनकी समझ में रमाकान्त इस प्रकार मां की बात न मानने के लिए ही पत्नी को शह देते थे। इसलिए वे प्रत्यक्ष रूप से तो निर्मला को अधिक कुछ न कह सकती थीं किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से, कुत्ते, बिल्ली के बहाने ही सही, अपने दिल का गुबार निकाला करतीं। निर्मला सब सुनती और समझती, किन्तु वह सुनकर भी न सुनती और जानकर भी अनजान बनी रहती।

वह अपना काम नियम-पृर्वक करती रहती; इन बातों का उसके ऊपर कुछ भी प्रभाव न पड़ता। कभी-कभी उसे कष्ट भी होता किन्तु वह उसे प्रकट न होने देती। वह सदा प्रसन्न रहती, यहाँ तक कि उसके चेहरे पर शिकन तक न आती। वह स्वयं

किसी की बुराई न करना चाहती थी, उसके विरुद्ध चाहे कोई कुछ भी करता रहे।

3

एक दिन कॉलेज से लौटते ही रमाकान्त ने कहा,-'आज एक बड़ा विचित्र किस्सा हो गया, निर्मला!'

क्या हुआ? निर्मला ने उत्सुकता से पूछा।

घृणा का भाव प्रकट करते हुए रमाकान्त बोले, 'हुआ क्या? यही कि तुम्हारी बिट्टन को न जाने किससे गर्भ रह गया है। और अब चार-पांच महीने का है। बात खुलते ही आज वह घर से निकाल दी गई है। उसके मायके में तो कदाचित् कोई है ही नहीं। सड़क पर बैठी रो रही है।'

बिट्टन बाल-विधवा थी। वह जन्म ही की दुखिया थी, इस लिए निर्मला सदा उससे प्रेम और आदर का व्यवहार करती थी। बिट्टन की करुणा जनक अवस्था से निर्मला कातर हो उठी। उसने रमाकान्त जी से पूछा,'फिर उसका क्या होगा? अब वह कहाँ जायगी?' रमाकान्त जी ने उपेक्षा से कहा,'कहाँ जायगी मैं क्या जानूं, जैसा किया है वैसा भोगेगी।' निर्मला के मुंह से एक ठंडी आह निकल गई। कुछ देर बाद न जाने क्या सोचकर वह दृढ़ स्वर में बोली, तो मैं जाती हूँ, उसे लिवा लाती हूँ, जब तक कोई दूसरा प्रबन्ध न हो जायेगा, वह मेरे साथ रही आवेगी।'

घबरा कर रमाकान्त बोले,'नहीं नहीं, ऐसी बेवकूफ़ी करना भी मत उसे अपने घर लाकर क्या अपनी बदनामी करवानी है? तुम्हें तो कोई कुछ न कहेगा, सब लोग मुझे ही बदनाम करेंगे।'

निर्मला ने दयाद्र भाव से कहा, 'अरे! तो इतनी छोटी-छोटी बातों से क्यों डरते हो? किसी की भलाई करने में भी लोग बदनाम करेंगे तो करने दो। परमात्मा तो हमारे हृदय को पहेचानेगा। मुझे तो उसकी अवस्था पर बड़ी दया आती है। तुम कहो तो मैं अभी जाकर उसे लिवालाऊं।' रमाकान्त के कुछ बोलने के पहले ही उनकी माँ बोल उठीं, 'ऐसी औरतों का तो इसे बड़ा दर्द होता है। घर में बुलाने जा रही है। जाय कहीं भी मुँह काला करे। पर याद रखना, खबरदार! जो, उसे घर में बुलाया तो? मैं अभी से कहे देती हूँ। अगर उस अछूत ने घर में पैर भी रक्खा तो अच्छा न होगा।'

निर्मला धीरे से बोली,'अगर वह आ ही गई तो फिर क्या करोगी, अम्माजी?' अम्माजी क्रोध से तिलमिला सी उठीं तड़प कर बोली,'मार के लकड़ी पैर तोड़ दूंगी, और क्या करूंगी? तू तो रामू के सिर चढ़ाने से इतनी बढ़ चढ़ के बोल रही है सो मैं रामू से डरती नहीं। तेरा और तेरे साथ रामू का भी मिजाज ठंडा कर दूंगी। ऐसी बज्ज़ात औरतों की परछाईं में भी रहना पाप है, उसे घर में बुलाने जा रही है।'

निर्मला ने कहा, 'पर अम्मजी यदि वह आई तो मैं दूसरों की तरह उसे दरवाजे पर से दुतकार तो न दूंगी। मैं यह तो कहती ही नहीं कि उसे सदा ही अपने घर में रखा जाय; पर हाँ, जब तक उसका कोई प्रबन्ध न हो जाय तब तक अगर वह घर के एक कोने में पड़ी रही तो कोई हानि तो न होगी! और कौन वह हमारे चूल्हे चौके में जायगी? आखिर बिचारी स्त्री ही तो है। भूलें किससे नहीं होतीं?'

अम्माजी क्रोध में आकर बोलीं, 'एक बार कह दिया कि उस रांड को घर में न घुसने दूंगी। बार बार ज़बान चलाए ही जा रही है। वह तो अपनी कोई नहीं है। कोई अपनी सगी भी ऐसा करती तो मैं लात मार कर निकाल देती। अब बार बार पूछ कर मेरे गुस्से को न बढ़ा, नहीं तो अच्छा न होगा।' निर्मला ने नम्रता से कहा,'पर तुम्हारा क्या बिगाड़ेगी, अम्मा जी? मेरे कमरे में पड़ी रहेगी और तुम चाहो तो ऐसा प्रबन्ध कर दूं कि तुम्हें उसकी सूरत भी न दिखे। और फिर अभी से उस पर इतनी बहस ही क्यों? वह तो तब की बात है जब वह इमसे आश्रय मांगने आवे।'

अम्माजी का क्रोध बढ़ा और वे कहने लगीं,-'तेरे कमरे में रहेगी और मुझे उसकी सूरत न दिखे। तो क्या दूसरी बात हो जायगी। कैसी उलटफेर के बात कहती है! तुझे अपने पढ़ने लिखने का घमंड हो तो उस घमंड में न भूली रहना। ऐसी पढ़ी-लिखियों को मैं कौड़ी के मोल के बराबर भी नहीं समझती। धर्म-कर्म से तो सदा सौ गज दूर, और ऐसी कुजात औरतों पर दया करके चली है धर्म कमाने। वाह री औरत! जिसे मुहल्ले भर में किसी ने अपने घर न रक्खा, उसे यह अपने घर में रखेगी। तू ही तो दुनिया भर में अनोखी है न? सब दूसरों को दिखाने के लिए कि बड़ी दयावन्ती है? जो भीतर का हाल न जाने उसके सामने इतनी बन। घर वालों को तो काटने दौड़ेगी और बाहर वालों को गले लगाती फिरेगी।'

निर्मला भी ज़रा तेज़ होकर बोली, 'तो अम्माजी मुझे इतनी खरी-खोटी क्यों...? 'बीच ही में निर्मला को डाँट कर चुप कराते हुए रमाकान्त बोले, तो तुम चुप न रहोगी निर्मला.. कब से सुन रहा हूँ कि ज़बान कैसी कैंची की तरह चल रही है। तुम्हारे

हृदय में बिट्टन के लिए बड़ी दया है, और तुम उसके लिए मरी जाती हो; तो जाओ उसे लेकर किसी धर्मशाले में रहो। मेरे घर में तो उसके लिए जगह नहीं है।'

निर्मला को भी अब क्रोध आ चुका था; उसने भी उसी प्रकार तेज़ स्वर में कहा,'तो क्या इस घर में मेरा इतना भी अधिकार नहीं है कि यदि मैं चाहूँ तो किसी को एक दो दिन के लिए भी ठहरा सकूँ? अभी उस दिन, तुम लोगों ने बाबू राधेलाल जी का इतना आदर सम्मान क्यों किया था? उनके चरित्र के बारे में कौन नहीं जानता? उनके घर ही में तो वेश्या रहती है और वह उसके हाथ का खाते-पीते भी हैं फिर विचारी बिट्टन ने क्या इससे भी ज्यादा अपराध किया?

अम्माजी गरज उठीं अब उनका साहस और बढ़ गया था, क्योंकि अभी-अभी रमाकान्त जी निर्मला को डांट चुके थे। वे बोलीं, 'चुप रह नहीं तो जीभ पकड़ कर खींच लूंगी। बड़ी बिट्टनवाली बनी है। विचारी बिट्टन, विचारी बिट्टन। तू भी बिट्टन सरीखी होगी, तभी तो उसके लिए मरी जाती है, न? जो सती होती हैं वे तो ऐसी औरतों की परछांईं भी नहीं छूतीं और तू राधे लाल के लिए क्या कहा करती है वह, वह तो फूल का भँवरा है। आदमी की जात है, उसे सब शोभा देता है, एक नहीं बीस औरतें रख ले। पर औरत आदमी की बराबरी कैसे कर सकती है?'

निर्मला ने सतेज और दृढ़ स्वर में कहा, 'बस अम्मा जी अब मैं ज्यादः न सुन सकूंगी। मैं बिट्टन सरीखी होऊँ या उससे भी बुरी किन्तु इस समय वह निराश्रिता है, कष्ट में है, मनुष्यता के नाते मैं उसे आश्रय देना अपना धर्म समझती हूँ और दूँगी।' अब रमाकान्त जी को बहुत क्रोध आ गया था, वे कमरे से

निकल कर आँगन में आ गये और आग्नेय नेत्रों से निर्मला की ओर देखते हुए बोले, 'क्या कहा? तुम बिट्टन को इस घर में आश्रय दोगी?'

निर्मला भी दृढ़ता से-बोली,'जी हाँ, जितना इस घर में आपका अधिकार है, उतना ही मेरा भी है। यदि आप अपने किसी चरित्रहीन पुरुष मित्र को आदर और सम्मान के साथ ठहरा सकते हैं; तो मैं भी किसी असहाय अबला को कम से कम, आश्रय तो दे ही सकती हूँ।' रमाकान्त निर्मला के और भी नज़दीक जाकर कठोर स्वर में बोले,'मेरी इच्छा के विरुद्ध तुम यहाँ उसे आश्रय दोगी?'

निर्मला ने भी उसी स्वर में उत्तर दिया,'जी हाँ, मेरी इच्छा का भी तो कोई मूल्य होना चाहिए; या मेरी इच्छा सदा ही आपकी इच्छा के सामने कुचली जाया करेगी।'

अब रमाकान्तजी अपने क्रोध को न सम्हाल सके और पत्नी के मुंह पर तीन-चार तमाचे तड़ातड़ जड़ दिए। निर्मला की ज़बान बन्द हो गई। बाबू रमाकान्त क्रोध और ग्लानि के मारे कमरे में जाकर अन्दर से सांकल लगा कर सो रहे। अम्मा जी दरवाज़े पर रखवाली के लिए बैठ गई कि कहीं बिट्टन किसी दरवाज़े से भीतर न आ जाय।

इस घटना के लगभग एक घंटे बाद, बिट्टन को जब कहीं भी आश्रय न मिला, तब उसने एक बार निर्मला के पास भी जाकर भाग्य की परीक्षा करनी चाही। दरवाज़े पर ही उसे अम्माजी मिलीं। बिट्टन को देखते ही वे कड़ी ललकार के साथ बोलीं,'कौन है? बिट्टन! दूर! उधर ही रहना, खबरदार जो कहीं देहली के भीतर पैर रक्खा तो!' बिट्टन बाहर ही रुक गई।

निर्मला पास पहुँच कर शान्त और कोमल स्वर में यह कहती हुई कि,‘बिट्टन! बाहर ही बैठो बहिन; मैं वहीं तुम्हारे पास आती हूँ,’ देहली से बाहर निकल गई। बिट्टन और निर्मला दोनों बड़ी देर तक लिपटकर रोती रहीं।

निर्मला ने कहा, ‘तुम्हारी ही तरह मैं भी बिना घर की हूँ बहिन! यदि इस घर पर मेरा कुछ भी अधिकार होता तो मैं तुम्हें इस कष्ट के समय कहीं भी न जाने देती। क्या करूं, विवश हूँ। किन्तु तुम मेरा यह पत्र लेकर मेरे भाई ललितमोहन के पास जाओ; वे तुम्हारा सब प्रबन्ध कर देंगे। उनका स्थान तो तुम जानती ही हो; पर रात के समय पैदल जाना ठीक नहीं। यह रुपया लो; तांगा कर लेना। ईश्वर पर विश्वास रखना बहिन! जिसका कोई नहीं होता, उसका साथ परमात्मा देता है।’ निर्मला ने, दस रुपये बिट्टन को दिए; वह पत्र लेकर चली गई। निर्मला घर में आई; एक चटाई डाल कर बाहर बरामदे में ही पड़ रही। सवेरे उसकी आँख उस समय खुली जब रमाकान्त उठ चुके थे और उनकी मां नहा कर पूजा करने की तैयारी कर रही थीं।

निर्मला नित्य की तरह उठ कर घर का सब काम करने लगी; जैसे शाम की घटना की उसे कुछ याद ही न हो। यदि वह मार खाने के बाद कुछ अधिक बकझक करती या रोती चिल्लाती तो कदाचित् अपनी इस हरक़त पर रमाकान्त जी को इतना पश्चात्ताप न होता, जितना अब हो रहा था। उन्हें बार-बार ऐसा लगता कि जैसे निर्मला ठीक थी और वे भूल पर थे। उनसे ऐसी भूल और कभी न हुई थी। कल न जाने क्यों और कैसे निर्मला पर हाथ चला बैठे थे। उनका व्यवहार उन्हीं को सौ-सौ

बिच्छुओं के दंशन की तरह पीड़ा पहुंचा रहा था। वे अवसर ढूंढ़ रहे थे कि कहीं निर्मला उन्हें एकान्त में मिल जाय तो वे पश्चात्ताप के आंसुओं से उसके पैर धो दें और उससे क्षमा माँग लें।

किन्तु निर्मला भी सतर्क थी; वह ऐसा मौका ही न आने देती थी। वह बहुत बच-बच कर घर का काम कर रही थी। उसके चेहरे पर कोई विशेष परिवर्तन न था, न तो प्रकट होता था कि खुश है और न ही कि नाराज़ है। हाँ! उसमें एक ही परिवर्तन था कि अब उसके व्यवहार में हुकूमत की झलक न थी। वह अपने को उन्हीं दो तीन नौकरों में से एक समझती थी, जो घर में काम करने के लिए होते हैं, किन्तु उनका कोई अधिकार नहीं होता।

~ Ω ~

6. जीवन का अर्थ

~ ज्ञानचंद मर्मज्ञ

<u>**लेखक परिचय:-**</u>

ज्ञानचंद मर्मज्ञ जी का जन्म 26 अगस्त 1959 को बनारस की रसमयी धरती के पास स्थित एक छोटे से कस्बे सैद्पुर में हुआ। जन्म से भारतीय, शिक्षा से अभियंता, रोजगार से उद्यमी और स्वभाव से कवि श्री ज्ञानचंद मर्मज्ञ अपेक्षाकृत कम हिन्दी भाषी क्षेत्र बेंगलुरु में राष्ट्र-भाषा हिंदी के प्रचार प्रसार और विकास के साथ साथ स्थानीय भाषा के साथ समन्वय के लिए सतत प्रयत्नशील हैं। लगभग तीन दशकों से पत्र-पत्रिकाओं की शोभा बढ़ा रहे ज्ञानचंद मर्मज्ञ जी की प्रथम काव्य-कृति "मिट्टी की पलकें" का विमोचन तमिलनाडू के राज्य पाल महामहिम श्री सुरजीत सिंह बरनाला के कर कमलो द्वारा फरवरी-2008 में हुआ जिसके उपरांत देश के लगभग सौ से भी अधिक संस्थाओं ने उन्हें अनेक सम्मानों से सम्मानित किया!

~*~

दिन ढलान पर था, साँझ धीरे-धीरे अपना सुरमई आँचल फैला रही थी। अंजुरी में ढेर सारे तारे लिए रात्रि अपने आगमन की प्रतीक्षा में दूर खड़ी मुस्कुरा रही थी। सडकों पर धुआँ उगलते हुए अनगिनत वाहन अपनी कर्ण भेदी आवाज़ में चीखें जा रहे थे मानों गँतव्य तक पहुँचाने की अधीरता उन्हें बेचैन कर रही हो। सड़क पर इन वाहनों के अलावा पैदल चलनेवालों की भी भारी भीड़ थी जिन में कुछ तेज गति से भाग रहे थे तो कुछ थोड़ा धीरे चल रहे थे।

कुछ के चेहरों पर चमक थी तो कुछ के चेहरे बुझे हुए थे। सबकी आँखों में सपनों का अम्बार था जिसे पूरा करने की ज़िद उन्हें चला रही थी। लोग चल तो रहे थे परन्तु भविष्य की संभावनाओं तक न पहुँच पाने का डर उनके पैरों में लिपटकर उनकी गति को शिथिल भी बना रहा था। परन्तु इन सब के बावजूद एक बात तो तय थी कि सभी कहीं न कहीं पहुँचने के लिए व्यग्र थे। इस भीड़ में ऐसा जीवन चल रहा था जिसके कारण पूरा शहर चलता है। इन बेचारे चलनेवालों का कोई गंतव्य निर्धारित नहीं था। सभी अपने जीवन का अर्थ ढूँढने में व्यस्त थे।

सुबह घर से निकलने के बाद वापस घर आकर एक कप चाय की प्याली में अपने पूरे दिन की थकान को घोल देने के का यह क्रम वर्षों से अनवरत चल रहा था। इनका जीवन किसी यंत्र की तरह चलायमान था जिसमें धड़कन तो थी परन्तु हृदय में निराशा और हताशा की अनुगूँज पसरी हुई थी।

इसी भीड़ में माधव भी था जो कल ही गाँव से शहर आया था। माधव गाँव का एक भोला भाला बारहवीं पास होनहार युवक था जिसकी आँखों में ढेर सारे रंगीन सपने थे। उसके सपनों में आलीशान बंगला, बड़ी बड़ी इम्पोर्टेड गाड़ियाँ और नौकर-चाकर थे। वह ढेर सारा धन कमाकर किसी रईस की तरह जीवन जीना चाहता था। माधव ने एक दूकान पर 5,000 रुपये प्रति माह की नौकरी कर ली और एक छोटा सा कमरा किराये पर ले लिया। उसका पूरे महीने का वेतन कमरे के भाड़ा और खाने -पीने में ही निकल जाता था।

महीने के अंत में उसके पास कुछ भी नहीं बच पाता था जिससे वह अपने सपनों को साकार करने को कोई योजना बना सके। रात होते ही उसके सपने उसकी आँखों में दीपशिखा की भांति जलने लगते थे और सूरज निकलते ही धुंध बनकर बिखर जाते थे। रात दिन वह यही सोचता रहता था कि उसके सपने कैसे पूरे होंगे। फिर उसने एक दिन निर्णय लिया कि वह आगे की पढ़ाई करेगा। अपने वेतन में से थोड़ा पैसे बचाकर वह धीरे -धीरे आगे की पढ़ाई करने लगा।

पढ़ाई के प्रति उसकी लगन और मेहनत रंग लाई और उसने स्नातक की पढ़ाई अच्छे अंकों से उत्तीर्ण कर लिया। अब उसके मालिक ने भी उसका वेतन बढ़ा दिया जिससे माधव और अधिक उत्साहित होकर प्रशासनिक सेवा (आई.ए.एस) की परीक्षा की तैयारी करने लगा। आखिर समय ने करवट बदला और माधव आई.ए.एस की परीक्षा में भी अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हो गया। उसकी खुशियों का कोई ठिकाना नहीं रहा। ख़ुशी के मारे उसकी आखों से आँसू बहने लगे। आज उसे अपने माता पिता की बहुत याद आ रही थी। काश वे जीवित होते और उसे तरक्की की उड़ान भरते हुए देख पाते। माधव को विश्वास था कि वे जहाँ भी होंगे उसकी उपलब्धि देखकर फूले नहीं समा रहे होंगे और अपना आशीर्वाद दे रहे होंगें।

अब माधव के सारे सपने बसंत के फूलों की तरह खिलने लगे और चन्दन की तरह महकने लगे। उसने जो भी चाहा था, जिस चीज की भी कल्पना की थी, आज सब कुछ उसे उपलब्ध होने जा रहा था। बंगला, गाड़ी नौकर, पद, प्रतिष्ठा क्या कुछ नहीं था उसके पास।किसी चीज कोई कमी नहीं थी। कल

तक जो जीवन अभावों में व्यतीत हो रहा था आज वह हर प्रकार के सुख -सुविधा से भर गया था। माधव पूरी निष्ठा और ईमानदारी से अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने लगा।

समय अपनी निर्वाध गति से काल खंड पर अपने पदचिह्नों को छोड़ते हुए आगे बढ़ता रहा और माधव संतुष्ट भाव से अपने जीवन में आगे बढ़ता रहा। परन्तु कभी-कभी उसके मन के किसी कोने में एक हल्की सी अपूर्णता की टीस, असंतोष का भाव उभर आता था। रातों में नींद उचट जाती थी और वह परेशान होकर सोचने लगता था इतनी अकुलाहट क्यों है? उसे लगता था सब कुछ होते हुए भी कहीं कुछ कमी सी है। उसके समझ में नहीं आ रहा था उसके पास किस चीज की कमी है जिसके कारण उसे अपूर्णता का बोध होता है।

कुछ दिनों बाद उसकी शादी भी हो गई। एक अच्छी और समझदार पत्नी के रूप में उसे सुशीला मिली जो उसकी पूरक बनकर हर पल उसके जीवन में अत्यधिक खुशियां भरने के प्रयास में लगी रहती थी। सुशीला के साथ माधव बहुत खुश था। उसे लगने लगा उसकी खुशियां पूर्ण हो गई हैं। परन्तु इसके बाद भी कभी-कभी असंतोष की टीस, अपूर्णता के भाव की अनुभूति के साथ उसके ह्रदय को व्यथित कर देती थी। उसे लगता था कहीं न कहीं जीवन का अर्थ अभी भी अधूरा है जिसे ढूंढने की दिशा में उसकी चेतना भटकती रहती है।

इसी बीच एक दिन कार्यालय के काम से उसे शहर से दूर जाना पड़ा। वापस लौटते समय रास्ते में उसने देखा कि कुछ छोटे-छोटे मासूम बच्चे सड़क पर पड़े कूड़े के ढेर में से कुछ ढूंढने का प्रयास कर रहे हैं उसने अपनी कार रोकी और

उन बच्चों के पास पहुँच गया। पूछा-क्या कर रहे हो? बच्चे डर कर भागने लगे परन्तु माधव ने उन्हे पकड़ लिया और पुचकार कर पूछा कि-वे स्कूल न जाकर यहाँ क्या कर रहे हैं। बच्चो ने उत्तर दिया कि वे अनाथ हैं, उनका इस दुनिया में कोई नहीं है। वे इसी तरह प्रतिदिन दिनभर कूड़े के ढेर में से बिकने वाली चीजें बटोरते हैं जिन्हें बेचकर वे अपना पेट पालते हैं।

उन्होंने यह भी बताया कि जिस दिन उन्हें पूरा दिन भटकने के बाद भी कुछ नहीं मिलता उस दिन वे भूखे ही सो जाते हैं। यह सुनकर माधव को अपने बीते हुए दिनों की यादें ताज़ा हो गईं। वह सोचने लगा उसके साथ तो उसके माँ - बाप थे जो मजदूरी करके बहुत ही मुश्किल से दो जून की रोटी का जुगाड़ कर पाते थे। इन बच्चो का तो कोई भी नहीं है। बचपन को इस रूप में देखकर माधव की आँखें भर आईं। उस दिन उसने उन बच्चों के साथ ही खाना खाया और घर आकर पूरी रात सोचता रहा, कितनी विचित्र दुनिया है।

किसी के पास इतना धन है कि वह उनसे ऐसी ऐसी चीजें खरीदता है जिनकी आवश्यकता भी नहीं है और कुछ लोगों के पास इतना भी पैसा नहीं है की वे दो जून की रोटी भी खा सकें। समाज में इतना बड़ा असुन्तल किस लिए? यही सोचते सोचते उसे कब नींद आ गई पता ही नहीं चला। नींद तो आ गई परन्तु बच्चो की चिंता के बादल नींद में भी आँसू बनकर उसकी आँखों से बरसते रहे। उस दिन उसने जो सपना देखा उसने उसे पूरी तरह उसे झकझोर कर रख दिया। उसने सपने में देखा कि उसका धन, उसकी संपत्ति उसके ऐशो आराम सब उसके सामने खड़े होकर उसे चिढ़ा रहे हैं।

माधव स्वयं को बौना महसूस करने लगा। इतना धन, संपत्ति आखिर क्यों चाहिए? इसका प्रयोजन क्या है? इनकी उपयोगिता क्या है? भूखे बच्चों को अगर अपनी भूख मिटाने ने के लिए कूड़े के ढेर पर जाकर निवाला ढूढना पड़े तो धिक्कार है ऐसे धन पर। अपने पास धन का अम्बार लगाकर आखिर हम क्या दिखाना चाहते हैं? किसको दिखाना चाहते हैं? दिखावे का मुखौटा हम कब तक लगाए रहेंगे? इन्हीं प्रश्नों के बौछार ने उसकी नींद आधी रात को ही खोल दी परन्तु उसकी आँखों में उमड़ता हुआ समुन्दर अब शांत प्रतीत हो रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे उसने कोई बड़ा निर्णय ले लिया है।

दूसरे दिन सुबह ही माधव उस स्थान पर पहुँच गया जहाँ वे बच्चे आज भी कूड़े के ढेर में अपना जीवन तलाश रहे थे। वह उन बच्चों को अपने साथ घर लाया। उनके रहने, खाने-पीने और पढ़ाई की पूरी व्यवस्था की। इतना ही नहीं माधव ने अपने जीवन की सारी जमा पूँजी लगाकर एक बाल विकास केंद्र की भी स्थापन की जहाँ ऐसे अनाथ बच्चों की परवरिश और उनकी शिक्षा का पूरा ध्यान रखा जा सके। देखते ही देखते इस केंद्र में असहाय बच्चों के चौमुखी विकास और उनके सुन्दर भविष्य के निर्माण हेतु काम होने लगा।

आज उस घटना को तीस वर्ष बीत चुके हैं। माधव ने बाल विकास केंद्र के रूप में जो बीज बोया था आज वह वटबृक्ष के रूप में विकसित हो गया है जहाँ लगभग हजार बच्चों की परवरिश और पढ़ाई के साथ साथ उनके भविष्य के विकास का भी ध्यान रखा जाता है। आज भी माधव अपने

वेतन का एक छोटा हिस्सा अपने पास रखकर बाकी पैसे बाल विकास केंद्र को दान कर देता है।

यह देखकर उसे बहुत ख़ुशी और संतोष होता है कि केंद्र से निकले हुए बच्चे आज अपने पैरों पर खड़े होकर देश के विकास में अपना अप्रतिम योगदान दे रहे हैं। अब उसका मन कभी अशांत नहीं रहता और न ही उसके हृदय के किसी कोने में कोई अपूर्णता या असंतोष की टीस ही उठती है। अब उसे रात में गहरी और प्यारी नींद भी आती है क्योंकि वह जान गया है कि निष्काम मानव सेवा ही मनुष्य को पूर्ण बनाती है। माधव को ख़ुशी है कि उसने जीवन का सही अर्थ पा लिया है।

~ Ω ~

7. गूँगे

~ रांगेय राघव

लेखक परिचय:-

रांगेय राघव का जन्म 17 जनवरी, 1923 श्री रंगाचार्य के घर हुआ था। इनका मूल नाम तिरूमल्लै नंबाकम वीर राघव आचार्य था, लेकिन उन्होंने अपना साहित्यिक नाम 'रांगेय राघव' रखा। इनकी माता श्रीमती कनकवल्ली और पत्नी श्रीमती सुलोचना थीं। इनका परिवार मूलरूप से तिरुपति, आंध्र प्रदेश का निवासी था। हिंदी के उन विशिष्ट और बहुमुखी प्रतिभावाले रचनाकारों में से हैं लेकिन जिन्होंने अल्पायु में ही एक साथ उपन्यासकार, कहानीकार, निबंधकार, आलोचक, नाटककार, कवि, इतिहास वेत्ता तथा रिपोर्ताज लेखक के रूप में स्वंय को प्रतिस्थापित कर दिया।

ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर जीवनी परक उपन्यासों का ढेर लगा दिया। कहानी के पारंपरिक ढाँचे में बदलाव लाते हुए नवीन कथा प्रयोगों द्वारा उसे मौलिक कलेवर में विस्तृत आयाम दिया। रिपोर्ताज लेखन, जीवन चरितात्मक उपन्यास और महायात्रा गाथा की परंपरा डाली। इनकी मृत्यु 12 सितंबर, 1962 में हुआ। 1951में हिन्दुस्तान अकादमी पुरस्कार, 1954में डालमिया पुरस्कार, 1957 में उत्तर प्रदेश सरकार पुरस्कार, 1961 में राजस्थान साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा मरणोपरांत 1966 में महात्मा गांधी पुरस्कारों से सम्मानित हैं।

~*~

'शकुतंला क्या नहीं जानती ?'

'कौन ? शकुंतला! कुछ भी नहीं जानती।'

'क्यों साहब? क्या नहीं जानती? ऐसा क्या काम है जो वह नहीं कर सकती?'

'वह उस गूँगे को नहीं बुला सकती।'

'अच्छा बुला दिया तो?'

'बुला दिया!'

बालिका ने एक बार कहनेवाली की ओर द्वेष से देखा और चिल्ला उठी - दे दूँ!

गूँगे ने नहीं सुना। तमाम स्त्रियाँ खिलखिलाकार हँस पड़ीं। बालिका ने मुँह छिपा लिया।

जन्म से वज्र बहरा होने के कारण वह गूँगा है। उसने अपने कानों पर हाथ रखकर इशारा किया। सब लोगों को उसमें दिलस्पी पैदा हो गई, जैसे तोते को राम-राम कहते सुनकर उसके प्रति हृदय में एक आनंद-मिश्रित कुतूहल उत्पन्न हो जाता है।

चमेली ने अँगुलियों से इंगित किया-फिर?

मुँह के आगे इशारा करके गूँगे ने बताया-भाग गई। कौन? फिर समझ में आया। जब छोटा ही था तब 'मां' जो घूंघट काढ़ती थी, छोड़ गई। क्योंकि 'बाप', अर्थात् बड़ी-बड़ी मूंछें, मर गया था। और फिर उसे पाला है-किसने? यह तो समझ में नहीं आया, पर वे लोग मारते बहुत हैं।

करुणा ने सबको घेर लिया। वह बोलने की कितनी जबर्दस्त कोशिश करता है! लेकिन नतीजा कुछ नहीं, वह केवल कर्कश कांय-कांय का ढेर अस्फुट ध्वनियों का वमन, जैसे आदिम मानव अभी भाषा बनाने में जी-जान से लड़ रहा हो।

चमेली ने पहली बार अनुभव किया कि यदि गले में काकल तनिक ठीक नहीं हो तो मनुष्य क्या से क्या हो जाता है। कैसी यातना है कि वह अपने हृदय को उगल देना चाहता है किंतु उगल नहीं पाता।

सुशीला ने आगे बढ़कर इशारा किया - मुँह खोल! और गूँगे ने मुँह खोल दिया। लेकिन उसमें कुछ दिखाई नहीं दिया। पूछा, गले में कौआ है? गूंगा समझ गया। इशारे से ही बता दिया-किसी ने बचपन में गला साफ करने की कोशिश में काट दिया। और वह ऐसे बोलता है जैसे घायल पशु कराह उठता है, शिकायत करता है, जैसे कुत्ता चिल्ला रहा हो और कभी-कभी उसके स्वर में ज्वालामुखी के विस्फोट की-सी भयानकता थपेड़े मार उठती है। वह जानता है कि वह सुन नहीं सकता। और बताकर मुस्कराता है। वह जानता है कि उसकी बोली को कोई नहीं समझता फिर भी बोलता है।

सुशीला ने कहा, 'इशारे गजब के करता है। अक्ल बहुत तेज है।' पूछा-खाता क्या है, कहाँ से मिलता है?

वह कहानी ऐसी है जिसे सुनकर सब स्तब्ध बैठे हैं। हलवाई के यहाँ रात-भर लड्डू बनाए हैं; कड़ाही मांजी है, नौकरी की है, कपड़े धोए हैं, सबके इशारे हैं, लेकिन- गूँगे का स्वर चीत्कार में परिणत हो गया है। सीने पर हाथ मारकर इशारा किया-हाथ फैलाकर कभी नहीं माँगा, भीख नहीं लेता; भुजाओं पर हाथ रखकर इशारा किया -- मेहनत का खाता हूँ, और पेट बजाकर दिखाया, इसके लिए, इसके लिए...

अनाथाश्रम के बच्चों को देखकर चमेली रोती थी। आज भी उसकी आँखों में पानी आ गया। वह सदा से ही कोमल है।

सुशीला से बोली-इसे नौकर भी तो नहीं रखा जा सकता। पर गूंगा उस समय समझ रहा था। वह दूध ले आता है। कच्चा मंगाना हो थन काढ़ने का इशारा कीजिए, औटा हुआ मंगाना हो, हलवाई जैसे एक बर्तन से दूध दूसरे बर्तन में उठाकर डालता है, वैसी बात कहिए। साग मंगाना हो गोल-गोल कीजिए या लंबी उंगली दिखाकर समझाइए... और भी... और भी... और चमेली ने इशारा किया-हमारे यहाँ रहेगा?

गूँगे ने स्वीकार तो किया किंतु हाथ से इशारा किया -क्या देगी? खाना? 'हाँ', चमेली ने सिर हिलाया।

'कुछ पैसे ?'

चार उँगलियाँ दिखा दीं। गूँगे ने सीने पर हाथ मारकर जैसे कहा - तैयार हैं। चार रुपए।

सुशीला ने कहा -पछताओगी। भला यह क्या काम करेगा?

'मुझे तो दया आती है बेचारे पर', चमेली ने उत्तर दिया -- न हो बच्चों की तबीयत बहलेगी। घर पर बुआ मारती थी, फूफा मारता था क्योंकि उन्होंने उसे पाला था। वे चाहते थे कि बाजार में पल्लेदारी करे, बारह-चैदह आने कमा कर लाए और उन्हें दे दे, बदले में वे उसके सामने बाजरे और चने की रोटियाँ डाल दें। अब गूँगा घर भी नहीं जाता। यहीं काम करता है। बच्चे चिढ़ाते हैं। कभी नाराज नहीं होता। चमेली के पति सीधे-सादे आदमी हैं। पल जाएगा बेचारा, किंतु वे जानते हैं कि मनुष्य की करुणा की भावना उसके भीतर गूँगेपन की प्रतिच्छाया है, जब वह बहुत कुछ करना चाहता है, किंतु कर नहीं पाता। इसी तरह दिन बीत रहे हैं।

चमेली ने पुकारा - गूँगे?

किंतु कोई उत्तर नहीं आया, उठकर ढूंढा - कुछ पता नहीं लगा। बसंता ने कहा - मुझे तो कुछ नहीं मालूम।

भाग गया होगा, पति को उदासीन स्वर सुनाई दिया। सचमुच वह भाग गया था। कुछ भी समझ में नहीं आया। चुपचाप जाकर खाना पकाने लगी। क्यों भाग गया! नाली का कीड़ा? वह छत उठाकर सिर पर रख दी, फिर भी मन नहीं भरा। दुनिया हँसती है, हमारे घर को अब अजायबघर का नाम मिल गया है... किसलिए... जब बच्चे, और वह भी खाकर उठ गए तो चमेली बची रोटियाँ कटोरदान में रखकर उठने लगी। एकाएक द्वार पर कोई छाया हिल उठी। वह गूंगा था। हाथ से इशारा किया-भूखा हूँ।

काम तो करता नहीं, भिखारी। फेंक दी उसकी ओर रोटियाँ। रोष से पीठ मोड़कर खड़ी हो गई। किंतु गूंगा खड़ा रहा। रोटियाँ छुईं तक नहीं। देर तक दोनों चुप रहे। फिर न जाने क्यों गूँगे ने रोटियां उठा लीं और खाने लगा। चमेली ने गिलासों में दूध भर दिया। देखा, गूँगा खा चुका है। उठी और हाथ में चिमटा लेकर उसके पास खड़ी हो गई।

'कहाँ गया था?' चमेली ने कठोर स्वर से पूछा।

कोई उत्तर नहीं मिला। अपराधी की भांति सिर झुक गया। सड़ से एक चिमटा उसकी पीठ पर जड़ दिया। किंतु गूंगा रोया नहीं। वह अपने अपराध को जानता था। चमेली की आँखों में से दो बूंदें जमीन पर टपक गईं। तब गूंगा भी रो दिया। और फिर यह भी होने लगा कि गूंगा जब चाहे भाग जाता, फिर लौट आता। उसे जगह-जगह नौकरी करके भाग जाने की आदत पड़

गई थी। और चमेली सोचती कि उसने उस दिन भीख ली थी या ममता की ठोकर को निस्संकोच स्वीकार कर लिया था?

बसंता ने कसकर गूँगे को चपत जड़ दी। गूँगे का हाथ और न जाने क्यों अपने आप रुक गया। उसकी आँखों में पानी भर आया और वह रोने लगा। उसका रुदन इतना कर्कश था कि चमेली को चूल्हा छोड़कर उठ आना पड़ा। गूंगा उसे देखकर इशारों से कुछ समझाने लगा। देर तक चमेली उससे पूछती रही। उसकी समझ में इतना ही आया कि खेलते-खेलते बसंता ने उसे मार दिया था।

बसंता ने कहा - अम्मां! यह मुझे मारना चाहता था।

'क्यों रे?' चमेली ने गूँगे की ओर देखकर कहा। वह इस समय भी नहीं भूली की गूंगा कुछ सुन नहीं सकता। लेकिन गूँगा भाव-भंगिमा से समझ गया। उसने चमेली का हाथ पकड़ लिया। एक क्षण को चमेली को लगा जैसे उसी के पुत्र ने आज उसका हाथ पकड़ लिया था। एकाएक घृणा से उसने हाथ छुड़ा लिया। पुत्र के प्रति मंगल कामना ने उसे ऐसा करने को मजबूर कर दिया।

कहीं उसका भी बेटा गूँगा होता, वह भी ऐसे ही दुख उठाता। वह कुछ भी नहीं सोच सकी। एक बार फिर गूँगे के प्रति हृदय में ममता भर आई। वह लौटकर चूल्हें पर जा बैठी, जिसमें अंदर आग थी, लेकिन उसी आग से वह सब पक रहा था जिससे सबसे भयानक आग बुझती है-पेट की आग, जिसके कारण आदमी गुलाम हो जाता है। उसे अनुभव हुआ कि गूँगे में बसंता से कहीं अधिक शारीरिक बल था। कभी भी गूँगे की

भांति शक्ति से बसंता ने उसका हाथ नहीं पकड़ा था। लेकिन फिर भी गूँगे ने अपना उठा हाथ बसंता पर नहीं चलाया।

रोटी जल रही थी। झट से पलट दी। वह पक रही थी, इसीसे बसंता बसंता है... गूंगा गूंगा है...

चमेली को विस्मय हुआ। गूंगा शायद यह समझता है कि बसंता मालिक का बेटा है, उस पर हाथ नहीं चला सकता। मन ही मन थोड़ा विक्षोभ भी हुआ, किंतु पुत्र की ममता ने इस विषय पर चादर डाल दी। और फिर याद आया, उसने उसका हाथ पकड़ा था।

शायद इसीलिए कि उस बसंता को दंड देना ही चाहा था, यह उसको अधिकार है। किंतु वह तब समझ नहीं सकी, और उसने सुना गूंगा कभी-कभी कराह उठता था। चमेली उठकर बाहर गई। कुछ सोचकर रसोई में लौट आई और रात की बासी रोटी लेकर निकली।

'गूँगे!' उसने पुकारा।

कान के न जाने किस पर्दे में कोई चेतना है कि गूंगा उसकी आवाज को कभी अनुसना नहीं कर सकता, वह आया। उसकी आँखों में पानी भरा था। जैसे उनमें एक शिकायत थी, पक्षपात के प्रति तिरस्कार था। चमेली को लगा कि लड़का बहुत तेज है। बरबस ही उसके होठों पर मुस्कान छा गई। कहा, ले खा ले। और हाथ बढ़ा दिया।

गूँगा इस स्वर की, इस सबकी उपेक्षा नहीं कर सकता। वह हँस पड़ा। अगर उसका रोना एक अजीब दर्दनाक आवाज थी तो यह हँसना और कुछ नहीं-एक अचानक गुर्राहट-सी चमेली के कानों में बज उठी। उस अमानवीय स्वर को सुनकर

वह भीतर ही भीतर काँप उठी। यह उसने क्या किया था? उसने एक पशु पाला था, जिसके हृदय में मनुष्यों की-सी वेदना थी। घृणा से विक्षुब्ध होकर चमेली ने कहा, 'क्यों रे, तूने चोरी की है?'

गूँगा चुप हो गया। उसने अपना सिर झुका लिया। चमेली एक बार क्रोध से कांप उठी, देर तक उसकी ओर घूरती रही। सोचा, मारने से यह ठीक नहीं हो सकता। अपराध को स्वीकार कराके दंड दे देना ही शायद कुछ असर करे। और फिर कौन मेरा अपना है। रहना हो तो ठीक से रहे, नहीं तो फिर जाकर सड़क पर कुत्तों की तरह जूठन पर जिंदगी बिताए, दर-दर अपमानित और लांछित...। आगे बढ़कर गूँगे का हाथ पकड़ लिया और द्वार की ओर इशारा करके दिखाया, 'निकल जा!'

गूँगा जैसे समझा नहीं। बड़ी-बड़ी आँखों को फाड़े देखता रहा। कुछ कहने को शायद एक बार होठ भी खुले, किंतु कोई स्वर नहीं निकला। चमेली वैसे ही कठोर रही। अबके मुंह से भी साथ-साथ, 'जाओ निकल जाओ। ढंग से काम नहीं करना है, तो तुम्हारा यहाँ कोई काम नहीं। नौकर की तरह रहना है, रहो, नहीं बाहर जाओ। यहाँ तुम्हारे नखरे कोई नहीं उठा सकता। किसी को भी इतनी फुर्सत नहीं है। समझे?' और फिर चमेली आवेश में आकर चिल्ला उठी, 'मक्कार, बदमाश! पहले कहता था, भीख नहीं मांगता, और सबसे भीख मांगता है। रोज-रोज भाग जाता है, पत्ते चाटने की आदत पड़ गई है। कुत्ते की दुम क्या कभी सीधी होगी? नहीं। नहीं रखना है हमें, जा, तू इसी वक्त निकल जा...।'

किंतु वह क्षोभ, वह क्रोध, सब उसके सामने निष्फल हो गए, जैसे मंदिर की मूर्ति कोई उत्तर नहीं देती, वैसे ही उसने भी

कुछ नहीं कहा। केवल इतना समझ सका कि मालकिन नाराज है और निकल जाने को कह रही है। इसी पर उसे अचरज और अविश्वास हो रहा है।

चमेली अपने-आप लज्जित हो गई। कैसी मूर्खा है वह! बहरे से जाने क्या-क्या कह रही थी? वह क्या कुछ सुनता है? हाथ पकड़कर जोर से एक झटका दिया और उसे दरवाजे के बाहर धकेलकर निकाल दिया। गूंगा धीरे-धीरे चला गया।

चमेली देखती रही।

करीब घंटे भर बाद शकुन्तला और बसंता दोनों चिल्ला उठे, 'अम्मा! अम्मा!!'

'क्या है?' चमेली ने ऊपर ही से पूछा।

'गूँगा...' बसंता ने कहा। किंतु कहने के पहले ही नीचे उतरकर देखा, 'गूँगा खून से भीग रहा था। उसका सिर फट गया था। वह सड़क के लड़कों से पिटकर आया था, क्योंकि गूंगा होने के नाते वह उनसे दबना नहीं चाहता था...दरवाजे की दहलीज पर सिर रखकर वह कुत्ते की तरह चिल्ला रहा था...। और चमेली चुपचाप देखती रही, देखती रही कि इस मूक अवसाद में युगों का हाहाकार भरकर गूँज रहा है।

और गूँगे... अनेक-अनेक हो, संसार में भिन्न-भिन्न रूपों में छा गए हैं, जो कहना चाहते हैं, पर कह नहीं पाते। जिनके हृदय की प्रतिहिंसा न्याय और अन्याय को परख कर भी अत्याचार को चुनौती नहीं दे सकती, क्योंकि बोलने के लिए स्वर होकर भी-स्वर में अर्थ नहीं है, क्योंकि वे असमर्थ हैं और चमेली सोचती है, आज दिन ऐसा कौन है जो गूँगा नहीं है। किसका हृदय समाज, राष्ट्र, धर्म और व्यक्ति के प्रति विद्वेष से, घृणा से

नहीं छटपटाता, किंतु फिर भी कृत्रिम सुख की छलना अपने जालों में उसे नहीं फँसा देती- क्योंकि वह स्नेह चाहता है, समानता चाहता है!

~Ω~